अधूरी विदाई

रणविजयसिंह प्रतापसिंह चौहान

BlueRose ONE .com
Stories Matter
NewDelhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS
India | U.K.

Copyright © Ranvijaysinh Pratapsinh Chauhan 2026

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.



For permissions requests or inquiries regarding this publication,
please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-81-17827-84-0

Cover Design: Deepak Katheria
Typesetting: Manisha Rawat

First Edition: October 2026

पितृ-वंदना: एक विराट व्यक्तित्व को शब्दार्पण



स्व. प्रतापसिंह किशोरसिंह चौहान (राणा साहेब)

(१६/०३/१९६६ – ०५/११/२०२४)

"शब्द कम पड़ते हैं व्यक्तित्व को बयां करने में,

पूरा जीवन बीत गया दूसरों को तराशने में;

आप तो थे उस बरगद की शीतल छाया,

जिसकी कमी कभी पूरी नहीं होगी इस जीवन में।"

आप केवल मेरे पिता ही नहीं, बल्कि मेरे प्रथम गुरु, मार्गदर्शक और आदर्श थे। एक शिक्षक के रूप में आपने हज़ारों के लोगो के अंधकारमय भविष्य में ज्ञान के दीप प्रज्वलित किए, और एक पिता के रूप में हमारे संसार को संस्कारों से सुसज्जित किया।

आपकी वह सादगी, आपका वह स्वाभिमान और अंतिम क्षणों तक मुस्कुराते हुए संघर्ष करने का आपका अनोखा अंदाज़ आज भी हमें हिम्मत देता है। आपने कभी शिकायत नहीं की, कभी हार नहीं मानी। आपके मौन में भी एक गहरी सीख थी और आपकी मुस्कान में पूरे जगत् का सुख था।

पापा, आपकी विदाई भले ही 'अधूरी' रही, लेकिन आपके दिए संस्कारों की विरासत अक्षुण्ण (अटूट) है। यह पुस्तक आपकी उसी अमर विरासत को चरणस्पर्श करने का मेरा एक छोटा सा प्रयास है।

लेखकीय

एक पुत्र का नमन, अश्रुपूर्ण समर्पण और शब्द-वंदना

आदरणीयपाठकवृंद, पूज्य संतवृंद, सम्माननीय शिक्षकगण, माननीय न्यायमूर्तिगण एवं गौरवशाली अधिकारीवृंद तथा समस्त स्नेहीजन,

आप सभी के श्रीचरणों में मेरा सादर प्रणाम एवं हृदय से वंदन।

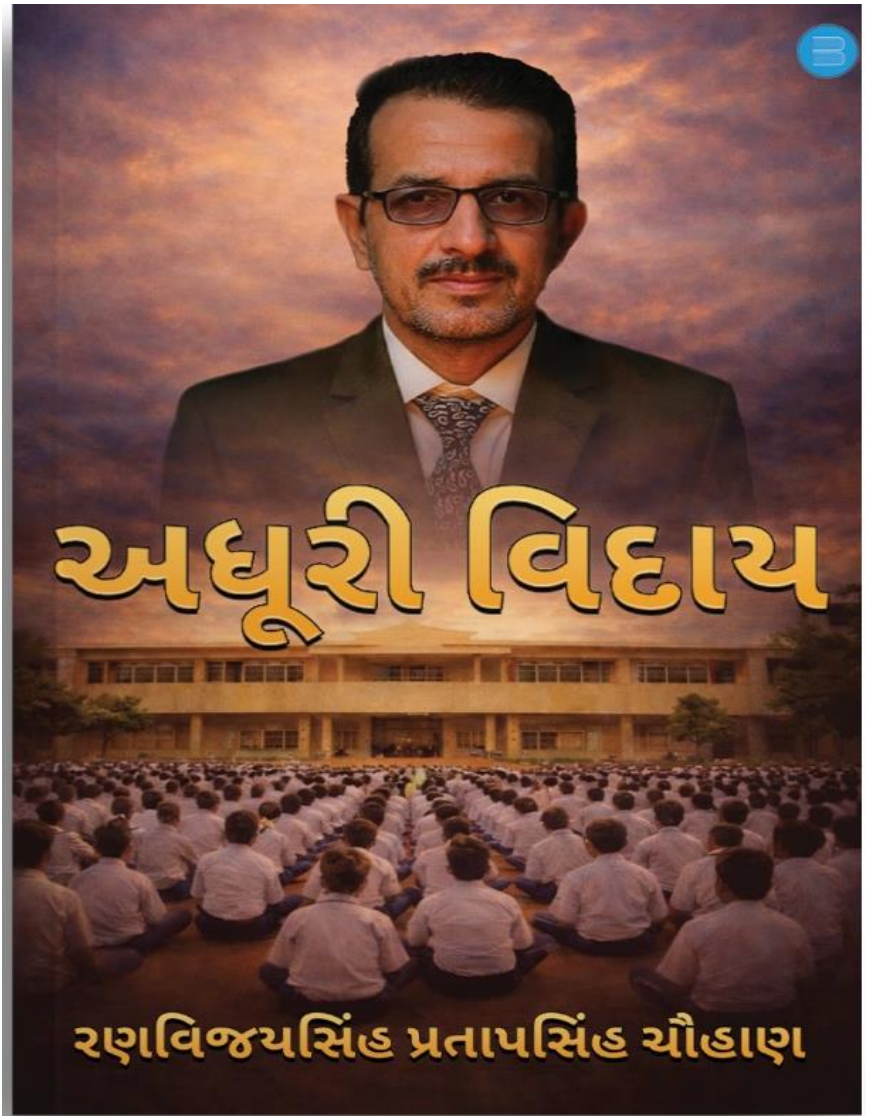
અધૂરી વિદાય
રણવિજયસિંહ પ્રતાપસિંહ ચૌહાણ

जब हृदय की अथाह गहराइयों से निकले अश्रु अक्षरों का रूप धारण करते हैं, तब वे केवल शब्दों का समूह नहीं रह जाते; वे एक पुत्र द्वारा अपने पिता के श्रीचरणों में अर्पित की गई भावांजलि बन जाते हैं।

मेरे पूज्य पिताजी स्वर्गीय श्री प्रतापसिंह किशोरसिंह चौहान, जिन्हें आप सभी अत्यंत स्नेह, सम्मान और आत्मीयता से 'राणा साहेब' कहकर पुकारते थे, उनके जीवन-संघर्ष, अटूट निष्ठा, स्वाभिमान, कर्मयोग और अमर स्मृतियों को समर्पित मेरी भावपुष्पांजलि 'अधूरी विदाई' को गुजराती भाषा में आप सभी ने जो अपार प्रेम, सम्मान और वात्सल्य प्रदान किया, उसके लिए मैं जीवनपर्यंत आपका ऋणी रहूँगा।

गुजराती भाषा में इस पुस्तक को मिले अभूतपूर्व स्नेह और व्यापक स्वीकार के पश्चात, आप सभी श्रेष्ठजनों के आशीर्वाद से यह सत्य जीवनगाथा अब हिंदी भाषा के माध्यम से देश के कोने-कोने में बसे पाठकों तक पहुँचने जा रही है।

यह क्षण मेरे लिए केवल प्रसन्नता का नहीं, बल्कि एक पुत्र के रूप में गर्व, कर्तव्य-बोध और भाव-विभोर कर देने वाली स्मृतियों का भी है। पूज्य पिताजी की स्मृतियाँ आज भी मेरे अंतर्मन को उसी प्रकार स्पर्श करती हैं और उनकी याद आते ही आँखें अनायास ही सजल हो उठती हैं।

१. अक्षरों में बहती पितृभक्ति, संस्कार और अश्रुधारा

मैं स्वयं साबरकांठा (गुजरात) के ऐतिहासिक नगर वडाली की गौरवशाली शैक्षणिक संस्था 'शेठ सी. जे. हाईस्कूल' का भूतपूर्व छात्र हूँ। और यह कहानी मेरे गाँव राधिवाड़ से लेकर वडाली तक की एक जीवन यात्रा है। यही वह पावन शिक्षण-संस्था है, जिसके प्रांगण में पूज्य पिताजी 'राणा साहेब' ने अपने जीवन का अमूल्य समय, अपनी ऊर्जा, अपनी प्रतिभा और अपना सर्वस्व विद्यार्थियों के उज्ज्वल भविष्य के निर्माण में समर्पित कर दिया।

बाल्यकाल में पिताजी की उँगली थामकर मैंने इसी विद्यालय के प्रांगण में अपने जीवन के प्रथम कदम रखे थे। उन्हीं कक्षाओं, उन्हीं गलियारों, उसी श्यामपट्ट और चॉक की धूल के बीच मैंने अपने पिताजी को केवल एक शिक्षक के रूप में नहीं देखा, बल्कि उन्हें हजारों विद्यार्थियों के भविष्य को आकार देने वाले एक महान शिल्पकार के रूप में अनुभव किया।

उनके लिए शिक्षा केवल विषयों का ज्ञान प्रदान करने का माध्यम नहीं थी; शिक्षा उनके लिए चरित्र-निर्माण, संस्कार-सृजन और जीवन को सही दिशा देने का पवित्र साधन थी।

आज जब मैं भी उसी परंपरा का अनुसरण करते हुए एक शिक्षक के रूप में अपनी सेवाएँ दे रहा हूँ, तब प्रत्येक क्षण मुझे यह अनुभव होता है कि शिक्षक होना केवल आजीविका का साधन अथवा एक पेशा नहीं है; यह तो समाज और आने वाली पीढ़ियों के प्रति समर्पित एक अनवरत तपस्या है।

और मेरे पिताजी 'राणा साहेब' इस तपस्या के ऐसे साधक थे, जिन्होंने जीवन की विपरीत परिस्थितियों में भी अपने आदर्शों, सिद्धांतों और मूल्यों से कभी समझौता नहीं किया।

जब मैंने 'अधूरी विदाई' लिखने का संकल्प लिया, तब मेरे मन में न तो प्रसिद्ध साहित्यकार बनने की आकांक्षा थी और न ही किसी व्यावसायिक उपलब्धि की इच्छा। मेरे हृदय में केवल एक ही पुकार थी—मेरे पूज्य पिताजी के वे अनगिनत त्याग, उनका अटूट स्वाभिमान, उनका कर्तव्यबोध, उनका क्षात्रधर्म और शिक्षा के प्रति उनका निष्काम समर्पण समाज तथा आने वाली पीढ़ियों के सामने सुरक्षित रह सके।

इस पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ को लिखते समय मेरी आँखों से अश्रु बहते रहे। कितनी ही रातें ऐसी बीतीं, जब नींद आँखों से कोसों दूर रही और मैं केवल उनकी स्मृतियों के सहारे बैठा रहा। कागज़ पर जब भी कोई शब्द अंकित करता, ऐसा प्रतीत होता मानो पूज्य पिताजी मेरे सामने खड़े हैं और अपनी वात्सल्यमयी दृष्टि से मुझे निहार रहे हैं।

इस पुस्तक का प्रत्येक अक्षर मेरे लिए साहित्य नहीं, बल्कि पितृस्मृति का स्पंदन है।

२. 'अधूरी विदाई' — हृदय को झकझोर देने वाला एक मर्मांतक सत्य

अनेक स्नेहीजन और पाठक मुझसे अक्सर पूछते हैं—

"रणविजयसिंह, इस पुस्तक का नाम 'अधूरी विदाई' ही क्यों रखा गया?"

इस नाम के पीछे मेरे जीवन का वह घाव छिपा है, जिसकी पीड़ा समय बीतने के साथ कम तो हो सकती है, परंतु कभी समाप्त नहीं हो सकती।

पूज्य पिताजी 'राणा साहेब' ने अपना संपूर्ण जीवन शेठ सी. जे. हाईस्कूल में विद्यार्थियों के चरित्र-निर्माण, संस्कार-सृजन और ज्ञान का दीप प्रज्वलित करने में समर्पित कर दिया था।

जब उनकी सेवानिवृत्ति का समय निकट आया, तब विद्यालय परिवार, उनके सहकर्मी शिक्षकों और हजारों भूतपूर्व विद्यार्थियों ने मिलकर यह संकल्प लिया कि राणा साहेब के

सम्मान में ऐसी भव्य एवं गरिमामयी विदाई दी जाए, जो उनकी वर्षों की सेवाओं के प्रति कृतज्ञता का एक अविस्मरणीय प्रतीक बन सके।

विद्यालय का वातावरण उत्साह और आत्मीयता से भर उठा था। उनके स्वागत और सम्मान के लिए तैयारियाँ चल रही थीं। हर कोई उस विशेष दिन की प्रतीक्षा कर रहा था, जब वर्षों तक विद्यालय को अपना जीवन समर्पित करने वाले इस कर्मयोगी शिक्षक को सम्मानपूर्वक विदाई दी जाएगी।

लेकिन नियति को कुछ और ही स्वीकार था।

जिस महान व्यक्तित्व के सम्मान में पूरा मंच सजाया जा रहा था, जिनके हाथों में सम्मान-पत्र सौंपा जाना था, जिनके कंधों पर शाल ओढ़ाई जानी थी और जिनके चरणों में पुष्प अर्पित किए जाने थे—वही राणा साहेब सेवानिवृत्ति समारोह से कुछ ही दिन पूर्व, ५ नवंबर को अचानक इस नश्वर संसार को छोड़कर अनंत यात्रा पर चले गए।

समारोह का दिन आया।

पूरा विद्यालय परिवार उपस्थित था। हजारों आँखें नम थीं। वातावरण में सम्मान भी था, वेदना भी थी और एक ऐसी रिक्तता भी, जिसे शब्दों में व्यक्त करना कठिन था।

लेकिन जिस व्यक्तित्व के सम्मान में वह समारोह आयोजित किया गया था, वे स्वयं वहाँ भौतिक रूप से उपस्थित नहीं थे।

एक पुत्र के रूप में मैंने अपने हृदय पर अपार वेदना का पत्थर रखकर, पिताजी की खाली कुर्सी और उनकी तस्वीर को साक्षी मानते हुए वह सम्मान स्वीकार किया।

जो सम्मान पिताजी के जीवित हाथों में सौंपा जाना था, उसे मुझे उनकी तस्वीर के समक्ष अर्पित करना पड़ा।

उस क्षण मेरे अंतर्मन से एक करुण पुकार उठी—

“हे विधाता! यह विदाई इतनी अधूरी क्यों रह गई?”

यही वह क्षण था, यही वह पीड़ा थी और यही वह स्मृति थी, जिसने मेरे हृदय में ‘अधूरी विदाई’ को जन्म दिया।

यह पुस्तक उसी अधूरी विदाई की पूर्ण अभिव्यक्ति है।

३. पाषाण हृदय को भी द्रवित कर देने वाली संवेदना और संत-मनीषियों का आशीर्वाद

जब यह पुस्तक पहली बार गुजराती भाषा में प्रकाशित हुई, तब मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि इसे इतना व्यापक, आत्मीय और भावपूर्ण प्रतिसाद प्राप्त होगा।

इस पुस्तक में लिखे गए प्रसंग किसी कल्पना की उपज नहीं हैं। इनमें एक पुत्र की आँखों से देखे गए सत्य, अनुभव की गई पीड़ा और पिता के प्रति असीम प्रेम की अनुभूति है। शायद यही कारण है कि इसके पृष्ठों में व्यक्त भावनाएँ अनेक पाठकों के हृदय तक सीधे पहुँच सकीं।

मुझे अत्यंत विनम्रता और कृतज्ञता के साथ यह स्वीकार करते हुए प्रसन्नता होती है कि समाज के पूज्य संतों, माननीय न्यायमूर्तियों, वरिष्ठ शिक्षकों तथा शासन-प्रशासन से जुड़े अनेक सम्माननीय अधिकारियों ने इस पुस्तक को आत्मीयता से पढ़ा और अपने विचारों एवं आशीर्वाद से मुझे अनुगृहीत किया।

कई संत-महात्माओं ने इसे केवल एक व्यक्ति की जीवनकथा न मानकर माता-पिता के प्रति भक्ति, कर्तव्य और जीवन-मूल्यों की प्रेरक अभिव्यक्ति के रूप में देखा।

माननीय न्यायमूर्तियों एवं वरिष्ठ अधिकारियों ने इस बात की ओर ध्यान आकर्षित किया कि आज के बदलते सामाजिक परिवेश में परिवार, संस्कार और कर्तव्य जैसे मूल्यों को जीवंत बनाए रखने के लिए ऐसी जीवनगाथाएँ नई पीढ़ी को प्रेरणा दे सकती हैं।

शिक्षा-जगत से जुड़े अनेक विद्वानों ने राणा साहेब के जीवन को एक समर्पित शिक्षक, कर्मनिष्ठ व्यक्तित्व और समाज-निर्माण में शिक्षा की भूमिका का प्रेरक उदाहरण माना।

इन सभी स्नेहीजनों के शब्द मेरे लिए केवल प्रशंसा नहीं, बल्कि पिताजी की स्मृतियों के प्रति समाज द्वारा व्यक्त सम्मान हैं।

मैं उन सभी महानुभावों के प्रति हृदय से कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने ‘अधूरी विदाई’ को अपना समय दिया, पढ़ा, समझा और अपने स्नेह से इसे समृद्ध किया।

४. गुजराती की सफलता से राष्ट्रीय क्षितिज की ओर — हिंदी संस्करण

साबरकांठा जिले के छोटे से नगर वडाली से प्रारंभ हुई यह भावनात्मक शब्द-यात्रा अब गुजरात की सीमाओं से आगे बढ़कर हिंदी के माध्यम से देश के विस्तृत पाठक-वर्ग तक पहुँचने जा रही है।

गुजराती पाठकों द्वारा दिए गए अपार स्नेह और देश के विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त निरंतर आग्रह के परिणामस्वरूप ‘अधूरी विदाई’ का हिंदी संस्करण आज आपके समक्ष प्रस्तुत है।

यह मेरे लिए केवल पुस्तक का भाषा-परिवर्तन नहीं है। मेरे लिए यह उस पिता की जीवनगाथा को अधिक व्यापक पाठक-वर्ग तक पहुँचाने का एक विनम्र प्रयास है, जिन्होंने अपना संपूर्ण जीवन शिक्षा और समाज के प्रति समर्पित कर दिया।

हिंदी भाषा के माध्यम से अब पूज्य राणा साहेब का जीवन-संघर्ष, उनकी जीवनशैली, उनके सिद्धांत, उनका स्वाभिमान और शेठ सी. जे. हाईस्कूल की उस पावन मिट्टी की सुगंध देश के विभिन्न हिस्सों तक पहुँच सकेगी।

देश के पाठक यह जान सकेंगे कि एक साधारण ग्रामीण परिवेश से आने वाले शिक्षक ने अपने जीवन की कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी सत्य, स्वाभिमान, कर्तव्य और नैतिक मूल्यों का साथ नहीं छोड़ा।

एक पुत्र के लिए इससे बड़ा सौभाग्य और क्या हो सकता है कि जिस पिता ने अपना जीवन बिना किसी अपेक्षा के समाज और विद्यार्थियों के भविष्य को समर्पित किया, उनके जीवन-संघर्ष और विचार आज व्यापक समाज तक पहुँच रहे हैं।

५. हृदय की गहराइयों से आभार और पावन समर्पण

इस अवसर पर मैं शेठ सी. जे. हाईस्कूल के यशस्वी प्रबंधक मंडल, अपने सभी आदरणीय गुरुजनों, वडाली नगर के स्नेही नागरिकों, अपने संपूर्ण परिवार तथा उन सभी सहृदय पाठकों के प्रति हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने इस पुस्तक को केवल पढ़ा ही नहीं, बल्कि इसे अपने घर और हृदय में स्थान दिया।

आपका स्नेह मेरे लिए इस पुस्तक की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

मेरे पूज्य पिताजी ‘राणा साहेब’ आज भले ही अपने भौतिक शरीर के रूप में हमारे बीच उपस्थित नहीं हैं, लेकिन उनकी स्मृतियाँ, उनके संस्कार, उनके विचार और उनके द्वारा दिए गए जीवन-मूल्य आज भी हमारे जीवन का मार्गदर्शन करते हैं।

मेरा विश्वास है कि जहाँ कहीं भी पिताजी की आत्मा होगी, वहाँ से उनका आशीर्वाद हम सभी पर सदैव बना रहेगा।

इस पुस्तक का प्रत्येक शब्द, प्रत्येक पंक्ति और प्रत्येक अक्षर मेरे पूज्य पिताजी के पावन श्रीचरणों में समर्पित है।

मैंने इसमें अपने पिता को महान सिद्ध करने का प्रयास नहीं किया है; मैंने केवल उस पिता को शब्द देने का प्रयास किया है, जिन्हें मैंने अपने जीवन में जिया है, महसूस किया है और जिनके संस्कारों ने मुझे जीवन का अर्थ समझाया है।

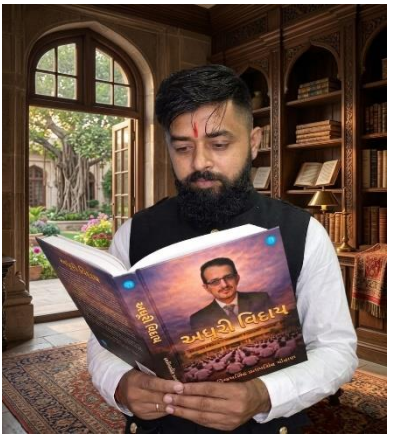

मेरी हार्दिक कामना है कि 'अधूरी विदाई' का यह हिंदी संस्करण भी पाठकों के हृदय को स्पर्श करे और माता-पिता के प्रति सम्मान, पारिवारिक संस्कार, कर्तव्यनिष्ठा तथा शिक्षक के गौरवपूर्ण दायित्व की भावना को और अधिक सशक्त बनाए।

यदि इस पुस्तक का एक भी पृष्ठ किसी संतान को अपने माता-पिता के प्रति अपने कर्तव्य का स्मरण करा सके, किसी विद्यार्थी के मन में अपने शिक्षक के प्रति सम्मान जगा सके, या किसी शिक्षक को अपने दायित्व के प्रति और अधिक समर्पित होने की प्रेरणा दे सके—तो मैं इस पुस्तक के लेखन को सार्थक मानूँगा।

अंततः यही मेरी विनम्र प्रार्थना है कि यह पुस्तक मेरे पिताजी की स्मृतियों को जीवित रखने वाली केवल एक जीवनगाथा न रह जाए, बल्कि उनके संस्कारों और जीवन-मूल्यों की एक ऐसी दीपशिखा बने, जिसकी रोशनी आने वाली पीढ़ियों तक पहुँचती रहे।

पूज्य पिताजी 'राणा साहेब' के पावन श्रीचरणों में कोटि-कोटि नमन।

आप सभी के श्रीचरणों में मेरा सादर प्रणाम।

आपका ही नम्र एवं स्नेही,
रणविजयसिंह प्रतापसिंह चौहान (राधिवाड़)
लेखक — 'અધૂરી વિદાય' / 'अधूरी विदाई'
शिक्षक एवं भूतपूर्व छात्र
शेठ सी. जे. हाईस्कूल, वडाली
(राधिवाड़, खेड़ब्रह्मा, साबरकांठा, गुजरात)

समर्पण



यह पुस्तक समर्पित है...

मेरे पिता,

स्व. प्रतापसिंह किशोरसिंह चौहान (राणा साहेब) के पवित्र चरणों में...

जिन्होंने स्वयं कष्ट सहकर हमें सुख के आसमान पर बैठाया,

जिन्होंने शून्य से सृजन करके हमारे जीवन को अर्थ दिया,

और जिन्होंने 'शिक्षक' बनकर दुनिया को और हमें अपने संस्कारों, अपने संघर्ष से सीख देकर आगे बढ़ाया है

पापा,

आपके जाने के बाद घर की वे दीवारें आज भी आपकी उपस्थिति ढूंढती हैं,

आपकी वह खाली कुर्सी आज भी आपका इंतज़ार करती है।

आप भले ही देह रूप में हमारे बीच नहीं हैं,

लेकिन इस पुस्तक के हर शब्द में और मेरी हर सांस में

आप आशीर्वाद बनकर सदैव जीवित हैं।

आपकी 'अधूरी विदाई' को शब्दों के माध्यम से पूर्ण करने की एक पुत्र की छोटी सी कोशिश...

प्रस्तावना: अधूरी विदाई

"चौक और डस्टर का वह सफर, अभी तो विश्राम मांग रहा था,
तभी ईश्वर की पाठशाला से बुलावा आ गया।
जिनके हाथों से हज़ारों का भविष्य लिखा जाता था साहब,
अफ़सोस, उन्हीं के जीवन के अंतिम पन्ने अधूरे रह गए।"

"समय और अच्छे व्यक्तित्व की दौड़ में समय जीत गया,

पर मैं अपने पापा को हार गया।"

जीवन के मंच पर कई पात्र आते हैं और चले जाते हैं, लेकिन 'पिता' एक ऐसा अनोखा पात्र हैं जो हमेशा पर्दे के पीछे रहकर पूरे नाटक को सफल बनाते हैं। पिता यानी घर की वह अदृश्य छत और मज़बूत दीवार, जो बाहर के तूफानों और कड़ी धूप को खुद सहते हैं ताकि अंदर परिवार सुकून और सुरक्षा का अनुभव कर सके। सामान्यतः हम माँ के प्रेम पर बहुत कुछ लिखते हैं, लेकिन पिता का प्रेम आषाढ़ के बादलों जैसा होता है; वह ज़्यादा गरजता नहीं, पर जब बरसता है तब समझ आता है कि वह कितनी शीतलता लेकर आया था।

मेरे पिता एक आदर्श शिक्षक थे—एक ऐसे शिक्षक जिन्होंने जीवन भर दूसरों के अंधकारमय जीवन में ज्ञान का दीप जलाने के लिए खुद को मोमबत्ती की तरह घिस दिया। उन्होंने 'खड़िया' और 'पट्टी' के माध्यम से कई पीढ़ियों का निर्माण किया और हज़ारों विद्यार्थियों को सफलता के शिखर तक पहुँचाया।

"शब्दों को संस्कार देकर जिन्होंने पीढ़ियों को तराशा,
उन्हीं के जीवन की पुस्तक ईश्वर ने जल्दबाज़ी में बंद कर दी।
दुनिया के लिए तो वे केवल एक 'शिक्षक' थे साहब,
पर मेरे लिए तो वे पूरा 'विश्वविद्यालय' थे।"

इस पुस्तक को लिखने का मेरा उद्देश्य केवल एक व्यक्ति की जीवनगाथा सुनाना नहीं है, बल्कि उस 'मौन संघर्ष' को शब्दों में ढालना है जो शायद हर मध्यमवर्गीय पिता और विशेष रूप से एक ईमानदार शिक्षक के जीवन का अनिवार्य हिस्सा होता है। शिक्षक होना केवल एक व्यवसाय नहीं, बल्कि एक तपस्या है। मैंने उन्हें देर रात तक जागकर विद्यार्थियों की

उत्तर-पुस्तिकाएँ जाँचते और सामाजिक कार्यों में व्यस्त रहकर निस्वार्थ भाव से लोगों की सेवा करते देखा है।

मेरे पिता का एक जीवनमंत्र था: "जो चीज़ पसंद आ जाए, उसकी कीमत चाहे जितनी भी हो, कभी देखना मत।" आज समझ आता है कि यह उदारता केवल हमारे लिए थी। अपनी ज़रूरतों के समय तो वे हमेशा बचत करते थे, लेकिन जब हमारे चेहरे पर मुस्कान लाने की बात आती, तब वह मध्यमवर्गीय शिक्षक अपनी आर्थिक सीमाओं को भूल जाता था। उन्होंने कभी कीमत देखकर हमारी खुशियों को नहीं तोला।

> "खुद के सपनों की आहुति देकर जिन्होंने मेरा संसार सजाया,
> उस पिता ने अपनी हथेली के छाले कभी नहीं दिखाए।
> मैंने तो केवल उनके चेहरे की झुर्रियाँ देखी थीं,
> पर उन झुर्रियों के पीछे छिपा पूरा इतिहास मुझसे पढ़ा न गया।"

मैंने उन्हें वर्षों तक सादगी के कपड़ों में देखा है ताकि हम नए कपड़े पहन सकें; मैंने उन्हें टूटे जूते सिलवाते देखा है ताकि हमें अच्छे और मनपसंद जूते मिल सकें। आज मेरे पास हर कीमती चीज़ खरीदने की क्षमता है, लेकिन वह सब लेते समय 'कीमत मत देखना' कहने वाले पिता की छत्रछाया दुनिया की कोई भी कीमत चुकाने के बाद भी नहीं मिल सकती।

मैंने एक सपना सजाया था कि जब मेरे पिता विद्यालय से सेवानिवृत्त (Retire) होंगे, तब मैं गर्व से उनका हाथ पकड़कर सम्मानपूर्वक उन्हें घर लाऊँगा। मैंने सोचा था कि अब उन हाथों में 'चौक' नहीं बल्कि मेरे बच्चों का हाथ होगा और वे सेवानिवृत्ति का आनंद लेंगे। लेकिन नियति का लिखा कुछ और ही था। जब संघर्ष पूरा हुआ, जब हम उन्हें सुख देने के योग्य बने—ठीक उसी मोड़ पर कुदरत ने क्रूरता दिखाई। विद्यालय के उस आधिकारिक विदाई समारोह से पहले ही उन्होंने इस दुनिया से अप्रत्याशित विदाई ले ली। जो विदाई गौरवशाली होनी चाहिए थी, वह दिल को चीर देने वाला आघात बन गई। स्कूल की अंतिम घंटी बजने से पहले ही, जिंदगी की विदाई का बुलावा आ गया।

कई लोग मुझसे पूछते हैं कि शीर्षक "अधूरी विदाई" ही क्यों? क्योंकि मुझे उनसे बहुत कुछ कहना था, जो अधूरा रह गया।

"अभी तो मुझे उनकी उंगली पकड़कर पूरी दुनिया दिखानी थी,

वह दुनिया और वे खुशियाँ उन्हें महसूस करानी थीं जिन्हें हमारे सपने पूरे करने में उन्होंने त्याग दिया था,

अभी तो उनके थके हुए कंधों पर मुझे सुख की चादर ओढ़ानी थी।

पर समय की वह घड़ी शायद थोड़ी जल्दी चल गई,

पापा को 'धन्यवाद' कहने का वह पल हमेशा के लिए अधूरा रह गया।"

मुझे उनका हाथ पकड़कर कहना था कि, "पापा, अब आपको चिंता करने की ज़रूरत नहीं है, आपका बेटा बैठा है।" लेकिन वह विदाई इतनी आकस्मिक थी कि मुझे आभार व्यक्त करने का अवसर भी न मिला। आज मेरे पास सब कुछ है, बस वे पिता नहीं हैं जिनके चरणों में यह सब न्योछावर कर सकूँ। पिता के जाने के बाद ही समझ आता है कि घर का मुख्य द्वार कितना मज़बूत था। मेरे पिता आज शारीरिक रूप से भले ही मेरे सामने नहीं हैं, लेकिन इस पुस्तक के हर शब्द में मैं उनकी सांसें और आशीर्वाद महसूस करता हूँ। अंत में, यह पुस्तक उन सभी पिताओं को समर्पित है जो मौन रहकर अपने परिवार के लिए निरंतर लड़ रहे हैं।

> "शरीर भले ही छूट गया, पर उनकी गूँज आज भी सुनाई देती है,
> मेरे हर सही निर्णय में पिता का चेहरा दिखाई देता है।"

पापा, आपकी विदाई भले ही प्रत्यक्ष रूप से अधूरी रही, पर आपके दिए संस्कारों की पूंजी मेरे साथ सदैव अक्षुण्ण है।

"आपका संघर्ष अब इन पन्नों पर अमर रहेगा"

अनुक्रमणिका

[१] विदाई के प्रकार 1
[२] अधूरी विदाई: शाश्वत विरह की अमर यात्रा 7
[३] जन्मभूमि 13
[४] संघर्ष और सफलता का सूर्यास्त 17
[५] संघर्ष का सूर्य और सपनों की शाम 20
[६] साबरकांठा जिले का मुख्य मथक हिम्मतनगर कॉलेज और राजपूत बोर्डिंग के संस्मरण 24
[७] परीक्षा: एक संघर्ष की कथा 27
[८] वैवाहिक जीवन: बारात से विदाई तक 32
[९] विसनगर की गलियों में बँटा पितृत्व का आनंद 35
[१०] पति के विरह में पत्र-लेखन 38
[११] मिट्टी की दीवार और मासूम किलकारी के अस्तित्व की पीड़ा 41
[१२] समर्पण, संघर्ष और सम्मान की गाथा 44
[१३] १०० रुपये की वेदना और पितृत्व का अग्निपथ 47
[१४] समय की क्रूरता और शनिवार की प्रतीक्षा 50
[१५] कर्मभूमि के कर्मयोगी 53
[१६] संघर्ष के शिल्पी 55
[१७] पुत्री की विदाई: संघर्ष की साक्षी और फूट-फूटकर बहते आँसू 57
[१८] ऋणबंध की कथा 59
[१९] गुरु वंदना 61
[२०] एक पुत्र और विद्यार्थी 64
[२१] दादा और पौत्र का अनमोल संबंध तथा कोरोना काल में आनंद की एकमात्र किरण 66
[२२] शिक्षक का जीवंत व्यक्तित्व 69
[२३] संघर्ष से विश्राम तक की अमूल्य यात्रा 72

[२४] अंतिम सत्र और अंतिम विदाई की मर्मस्पर्शी गाथा 76
[२५] पीड़ा की गाथा..... 84
[२६] संघर्ष की कठिन रातें 88
[२७] साहेब की भावपूर्ण अंतिम यात्रा 93
[२८] शोक सभा 96
[२९] मोबाइल स्क्रीन पर अधूरा सपना..... 101
[३०] अधूरी विदाई: शून्यता का सम्मान समारोह 103
[३१] त्याग की मूरत और स्मृतियों का अवकाश..... 108
[३२] पिता:एक अभेद्य कवच और दुनिया के बदलते रंग 111
[३३] अंतिम मनका: विदाई अधूरी, पर विरासत अखंड..... 115
स्नेहांजलि: एक अजातशत्रु मित्र की याद में... 117
श्रद्धांजली: सत्य के साधक और मेरे परम हमदर्द को... 119
स्मृति -वंदना: परायों को अपना बनाने वाली सहृदयता की याद में... 121
स्मृति-वंदना:राधिवाड़ की धरती पर मित्रता की वो मीठी महक... 123
स्मृति-अंजलि: मित्रता कभी मरती नहीं..... 125
पितृ-प्रेम का पवित्र प्रतिबिंब: 'रणो' सेट हुआ और बापू हर्षित हुए! 127
शब्दांजलि: वडाली के विद्याधाम का एक अमर सितारा... 129
‘अधूरी विदाई’ — पिता को शब्दों में समर्पित एक अमर श्रद्धांजलि 132
‘अधूरी विदाई’: एक पुत्र के हृदय से निकली भावनाओं की अमर अभिव्यक्ति 139
एक सच्ची घटना पर आधारित पुस्तक — “अधूरी विदाई” 141
अधूरी विदाई — एक बेटे के हृदय से निकली पिता को भावपूर्ण श्रद्धांजलि 142
मेरे जीवन की दिशा बदलने वाले और मेरी हर उपलब्धि की
नींव रखने वाले गुरु के नाम... 144
अपने पिता के चरणों में अपने समस्त भावों के साथ शीश झुकाकर नमन करती हूँ। 147
पापा… आपकी याद हमेशा रहेगी..... 149

[१] विदाई के प्रकार

विदाई, यह दो अक्षरों और तीन वर्णों से बना शब्द पूरे जीवन का सार समझाता है। यह केवल अलग होना नहीं है, बल्कि समय के बहाव में बहते हर क्षण, भावना और संबंध को सम्मान देने की एक प्रक्रिया है। जीवन के इन सभी चरणों से गुज़रना मनुष्य की आंतरिक शक्ति, संवेदनशीलता और स्वीकार्यता का प्रतीक है।

प्रसिद्ध लेखिका काजल ओझा ने कितना सुंदर कहा है...

"चल, उछाल सिक्का समय का…
और बंद मुट्ठी में पकड़कर
पूछ नसीब से
किस ऋणानुबंध से कौन मिले किससे?
किस रास्ते से होकर कहाँ पहुँचे?
और अचानक एक पगडंडी
तुम्हारे नाम की पुकार लगाकर
मुड़ जाए अनजान राह की ओर;
हाथ की रेखाएँ पलकों में सहेजे सवालों को
टपकाएँ आँखों से,
जन्मांतर की नमी मुट्ठी में बंद करके
समय का भीगा सिक्का फिर उछाल दे;
समय को छू लिया तुमने,
नमी हाथ की रेखा बनकर
धड़कती है अब पल-पल।"

यह केवल कोई कविता नहीं, बल्कि हृदय को छू लेने वाला वह सत्य है, जो मेरे लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

नीचे विदाई के विभिन्न क्षणों का विस्तृत वर्णन किया गया है, जो आपको हर चरण की गहनता का अहसास कराएगा:

विदाई के विभिन्न चरण:

१. विवाह विदाई (कन्या विदाई):

कन्या जब पिता का घर छोड़कर पति के घर जाती है, तो वह क्षण भारतीय संस्कृति में 'महा विदाई' माना जाता है। यह केवल एक स्थान का परिवर्तन नहीं, बल्कि संबंधों, नामों और पहचान का पुनर्स्थापन है। एक तरफ बेटी के नए जीवन की शुरुआत की खुशी होती है, तो दूसरी तरफ माता-पिता के लिए अपने अस्तित्व के एक हिस्से को दूर करने की पीड़ा। यह विदाई प्रेम, आशीर्वाद और त्याग का अद्भुत संगम है।

२. गृह विदाई:

जब बच्चा शिक्षा या नौकरी के लिए पहली बार घर छोड़कर अकेला निकलता है। यह विदाई व्यक्ति को पूर्ण संरक्षण से बाहर निकालकर स्वतंत्रता के वास्तविक अनुभव की ओर ले जाती है। घर की दीवारों की गर्माहट से बाहर निकलने का अर्थ है—खुद निर्णय लेना, गलतियाँ करना और सीखना। माता-पिता के लिए यह क्षण गर्व और खालीपन का मिला-झूला भाव होता है।

३. मातृभूमि विदाई (धरती विदाई):

जन्मभूमि, जहाँ आपने सांस ली, खेले खुदे और बड़े हुए, उसे छोड़कर परदेश जाना। यह विदाई केवल मिट्टी से नहीं, बल्कि उस भूमि से जुड़े संस्कारों, भाषा और संस्कृति की जड़ों से अलग करती है। परदेश में बस जाने के बाद भी वतन की सौंधी महक और उसकी स्मृतियाँ हृदय में सदा जीवंत रहती हैं।

४. सामूहिक प्रयाण विदाई:

जब किसी शहर या देश के लिए पूरा परिवार एक साथ विदा लेता है। यह विदाई सामूहिक होती है। पुराने पड़ोसियों, परिचित रास्तों और स्थापित जीवनशैली से बाहर निकलकर नए पोशाक में ढलने की यह एक बड़ी चुनौती होती है।

५. मित्रता / प्रेम विदाई:

समय, परिस्थितियों या बदलते लक्ष्यों के कारण जब मित्र या प्रेमी अलग होते हैं। यह विदाई संबंध का अंत नहीं, बल्कि उसके स्वरूप का परिवर्तन है। निकटता दूर होने से हृदय में एक

खालीपन रह जाता है, पर यादों का बंधन स्थायी रहता है। यह विदाई परिपक्वता और स्वीकार्यता सिखाती है।

६. यात्रा विदाई:

यात्रा शुरू करने से पहले प्रियजनों से मिलने वाला आलिंगन और आशीर्वाद। यह विदाई अस्थायी होती है, परंतु यह यात्री को यह मानसिक संबल देती है कि कोई उसका इंतज़ार कर रहा है। रास्ते बदलेंगे, पर भावनाएँ नहीं बदलतीं।

७. शिक्षा विदाई:

स्कूल या कॉलेज का अंतिम दिन। वर्षों साथ बिताने के बाद गुरुओं और सहपाठियों से बिछड़ना। यह विदाई मासूमियत के अंत और व्यावहारिक दुनिया में प्रवेश का प्रतीक है। अब किताबों का ज्ञान छोड़कर जीवन के वास्तविक अनुभवों का ज्ञान पाना शुरू होता है।

८. गुरु विदाई:

गुरु के चरणों से आशीर्वाद लेकर जब शिष्य अपने मार्ग पर अग्रसर होता है। इस विदाई में कोई उदासी नहीं, केवल कृतज्ञता का भाव होता है। गुरु द्वारा दिया गया ज्ञान और संस्कार ही शिष्य का स्थायी साथी बनता है।

९. ज्ञान / अभ्यास विदाई:

किसी विशेष कौशल, अध्ययन या प्रोजेक्ट को पूरा करने के बाद उस संस्था या गुरु से विदा लेना। यह विदाई दर्शाती है कि अब आप अपने क्षेत्र में निपुण हो चुके हैं और अब खुद अपने गुरु बनकर आगे बढ़ना है।

१०. कर्म विदाई (सेवानिवृत्ति):

सेवानिवृत्ति (Retirement) जीवन के एक बड़े अध्याय का अंत है। यह विदाई पद, पहचान और दैनिक कार्य की नियमितता से आती है। हाथ में फ़ाइलें नहीं, बल्कि अब स्व-अनुभव की यादें होती हैं। यह क्षण विश्राम करने और अपने अधूरे शौक को पुनर्जीवित करने का अवसर देता है।

११. राजनीतिक / पद विदाई:

जब कोई राजा, नेता या अधिकारी अपना पद छोड़ता है। सत्ता का त्याग करना कठिन है, परंतु यह विदाई सम्मान और नैतिकता का प्रतीक है। यह सिखाती है कि पद स्थायी नहीं होता, परंतु व्यक्ति का मान और कार्य स्थायी रहता है।

१२. मन की विदाई:

जब कोई व्यक्ति शारीरिक रूप से आपके साथ हो, लेकिन मन से उस रिश्ते से अलग हो चुका हो। यह विदाई सबसे गहन और कठिन होती है, क्योंकि हृदय में प्रेम की भावनाएँ सूख चुकी होती हैं, फिर भी रिश्ता निभाना पड़ता है। इस मौन और खालीपन को सहन करना पड़ता है।

१३. मनोविदाई (मानसिक मुक्ति):

किसी पुरानी घटना, आघात या दुख को मन से सदा के लिए विदा कर देना। आत्म-उपचार (Self-healing) और जीवन में आगे बढ़ने के लिए यह विदाई आवश्यक है। मानसिक बोझ को छोड़कर शांति और नई शुरुआत की ओर कदम बढ़ाना ही मनोविदाई है।

१४. अधूरी विदाई:

जब किसी कारणवश विदाई लेने का अवसर ही नहीं मिलता। कोई व्यक्ति अचानक छोड़कर चला जाए या कोई बात अनकही रह जाए। इस अधूरी विदाई की पीड़ा लंबे समय तक दिल में एक ऐसा अध्याय छोड़ जाती है, जो कभी पूरा नहीं होता।

१५. स्वप्न विदाई:

वर्षों से देखे गए किसी बड़े सपने का टूट जाना या अधूरा रह जाना। यह विदाई आशा का दीपक बुझा देती है, लेकिन यह भी सिखाती है कि जीवन में एक रास्ता बंद होता है तो दूसरा खुलता है। सपने टूटे, फिर भी जीवन जीने की आस बाकी रहती है।

१६. नैतिक विदाई (अहंकार त्याग):

मानव द्वारा अपने अहंकार, लालच, क्रोध या ईर्ष्या जैसी नकारात्मक वृत्तियों को विदा करना। यह आत्म-शुद्धि का मार्ग है। अहंकार छोड़ने से मन हल्का होता है और जीवन शांति का प्रसाद बन जाता है।

१७. अन्याय विदाई:

परिस्थितियों, दबाव या सामाजिक कारणों से मजबूरी में किसी भावना या प्रिय व्यक्ति से विदा लेना। इस विदाई में अन्याय का भाव और आत्मा की वेदना छिपी होती है। हृदय की तरंगे आँसुओं में घुल जाती हैं।

१८. संवेदनात्मक विदाई (समापन):

किसी किस्से, संबंध या समय का अंतिम, शांतिपूर्ण और पूर्ण समापन। कोई अफ़सोस नहीं, बस केवल स्वीकार्यता होती है। यह विदाई प्रेम की भांति मधुर होती है, क्योंकि अतीत को पूर्ण शांति मिल जाती है।

१९. धार्मिक / तीर्थ विदाई:

किसी धार्मिक यात्रा या तीर्थस्थल से वापस लौटना। पवित्र स्थान छोड़ना पड़ता है, पर मन पर आशीर्वाद और असीम शांति की छाप कायम रहती है। यह विदाई ईश्वर के दिव्य साथ की अनुभूति कराती है।

२०. गौरव विदाई (वीर विदाई):

युद्ध में जाते हुए वीर को माता, पत्नी और धर्म द्वारा दी जाने वाली विदाई। यह आँसुओं की विदाई नहीं, बल्कि गर्व और सर्वोच्च बलिदान के उदात्त भाव की विदाई है। यह तिरंगे के लिए मर मिटने का साहस देने वाला क्षण है।

२१. आत्म विदाई (संन्यास):

संन्यासी द्वारा मोह-माया का त्याग करके आत्म-खोज के लिए संसार छोड़ना। यह विदाई भौतिक बंधनों से मुक्ति और परम आनंद की ओर मार्ग है। जग को छोड़कर जग की इच्छा छोड़ देना ही योगी की विदाई है।

२२. समय की विदाई:

क्षणों, दिनों और वर्षों का बीत जाना। हर दिन सूर्य ढलता है और वर्ष पूरा होता है। यह विदाई समय की निरंतर गति और उसकी अनंतता का अहसास कराती है। आज बीता हुआ दिन भी स्मृतियों के संस्मरण छोड़ गया है।

२३. प्रकृति / ऋतु विदाई:

बारिश जाती है, सर्दी आती है, प्रकृति का रूप बदलता है। यह विदाई दर्शाती है कि परिवर्तन प्रकृति का मूल नियम है। पतंगें उड़ गईं या पत्ते झड़ गए, फिर भी हवा के साथ यादों का बहाव कायम रहता है।

२४. प्राकृतिक विदाई:

पशु-पक्षियों, प्राणियों या वनस्पतियों की विदाई। प्रकृति की हर वस्तु की आयु सीमित है। यह विदाई हमें सहजता से जीवनचक्र को स्वीकार करना सिखाती है।

२५. संस्कार विदाई (अस्थि विसर्जन):

शरीर को अग्नि समर्पित करने के बाद राख का विसर्जन। यह अंतिम विधि देह का मोह छुड़ाकर आत्मा की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करती है। धूल बनकर हवा में बह जाना अंत नहीं, बल्कि परम मुक्ति है।

२६. स्वयं / आत्म-विदाई:

आंतरिक शांति के लिए समाज या जीवन से थोड़ा विराम लेना। अपने ही पुराने विचारों, आदतों या मनोभावों को अलविदा कहना। एकांत के मार्ग पर कदम रखना यानी आत्म-खोज और परम शांति की ओर प्रस्थान।

२७. अंतिम विदाई (मृत्यु):

यह जीवन की अनिवार्य और सबसे बड़ी विदाई है—जब आत्मा इस नश्वर देह को त्याग देती है। यह विदाई केवल दुख नहीं, बल्कि जीवन का परम सत्य है। मिट्टी मिट्टी में मिल जाती है, आत्मा अनंत आकाश में लीन हो जाती है। अंतिम विदाई अंत नहीं, बल्कि परम प्रकाश की ओर महाप्रस्थान है।

अंतिम अध्याय: विदाई का दार्शनिक सत्य

मनुष्य के जीवन में आने वाले ये २७ विदाई के क्षण, भले ही कितने भी कठिन और कष्टदायक क्यों न हों, पर वे जीवन के असली चालक-बल हैं। वे हमें रोकते नहीं, बल्कि जीवन का पाठ सिखाकर भीतर से अटूट और मज़बूत बनाते हैं। हर विदाई के भीतर एक नई शुरुआत की संभावना छिपी होती है।

"जीवन का संगीत तभी पूर्ण होता है, जब उसमें स्वागत और विदाई दोनों का समतल ताल हो।"

[२] अधूरी विदाई: शाश्वत विरह की अमर यात्रा

"कलम आज लिखती है, उस मौन को जो टूटा नहीं था;

पुस्तक बन गया वह दर्द, जो कभी कम नहीं हुआ था।

यदि पूर्ण हुई होती विदाई, तो बात यहीं खत्म हो जाती;

इस अधूरेपन ने ही तो आपको अमर कर, मेरी इस रचना को जन्म दिया।"

इस जन्म का ऋण चुकाया, और कौन-सा संचय यहाँ रखा?

मैं उस मंच पर बैठा था। बाहर उजाला था, लेकिन तब ही मेरे अंतर्मन के अंधकार का बोझ मेरी आँखों से बह रहा था। वे आँसू किसी सामान्य शोक का प्रमाण नहीं थे, वे तो एक परम सत्य की अनुभूति थे। सभागार भरा हुआ था, लोग मेरी ओर देख रहे थे, पर मेरा ध्यान तो शून्य में स्थिर था। ठीक उसी क्षण, जब दुनिया 'पूर्णविराम' की अपेक्षा कर रही थी, तब मेरे मस्तिष्क में बिजली की तरह एक शब्द कौंधा: "अधूरी विदाई।"

और उस शब्द ने... उस एक शब्द ने ही मेरे अस्तित्व को, मेरी चेतना को जंझोर कर रख दिया। उस क्षण मुझे अहसास हुआ कि विदाई हमेशा अंत नहीं होती; कुछ विदाइयाँ तो रिश्ते के एक नए, अदृश्य अध्याय की शुरुआत होती हैं। आज, मैं उसी वेदना, उसी खोज और उसी शाश्वत सत्य को एक पुस्तक का रूप देकर आपके समक्ष रख रहा हूँ। यह शब्द मेरी आत्मा से उतरकर कलम द्वारा काग़ज़ पर आया है, और अब पुस्तक बनकर पाठकों के हृदय को छूने जा रहा है।

'अधूरी विदाई' किसी घटना का विवरण मात्र नहीं है, बल्कि एक ऐसी मनोदशा है जो हृदय में एक शाश्वत शून्यावकाश (शून्य) पैदा करती है। जब कोई विदा लेता है, तब दुख होने के बावजूद एक निश्चितता होती है कि अध्याय समाप्त हो गया। परंतु जब विदाई 'अधूरी' रह जाती है, तब समाप्ति के स्थान पर एक अनंत प्रतीक्षा का प्रारंभ होता है, जहाँ अंतिम पृष्ठ कभी लिखा ही नहीं जाता। यह तो उस भावना का स्वीकार है, जो कहती है कि 'कुछ रिश्तों की मृत्यु नहीं होती, वे केवल अपना पता बदल लेते हैं।'

मैं आपको उस 'अधूरी विदाई' की जड़ों में ले चलता हूँ।

अधूरी विदाई का स्वरूप

अधूरी विदाई केवल दो व्यक्तियों के बीच का शारीरिक बिछोह नहीं है, बल्कि एक अनसुलझी भावनात्मक उलझन है। यह शब्द जीवन के ऐसे जटिल मोड़ों का प्रतिनिधित्व करता है, जहाँ कोई संबंध, कोई व्यक्ति या कोई अध्याय बिना पूर्णविराम के ही अचानक समाप्त हो जाता है। विदाई में हमेशा दुख होता है, परंतु 'अधूरी विदाई' में दुख के साथ एक स्थायी कष्ट और पछतावा घुला होता है, जो आत्मा को अनंत काल तक कचोटता रहता है।

विदाई किसी भी संबंध का स्वाभाविक समापन है, चाहे वह मृत्यु के द्वारा हो या जीवन के मार्ग अलग होने से। परंतु 'अधूरी'—यह एक शब्द यहाँ इस बात की ओर संकेत करता है कि जिस व्यक्ति की विदाई हुई है, उससे अंतिम क्षणों में जो कहना था वह कहा नहीं गया, जो समझाना था वह समझाया नहीं गया, या फिर रिश्ते को एक उचित अंत (Closure) देने का अवसर ही नहीं मिला।

इस अधूरी विदाई के रूप अत्यंत करुणामय होते हैं:

१. अनिश्चित विदाई: सबसे अधिक करुण और पीड़ादायक रूप अनिश्चित विदाई का होता है, जब कोई व्यक्ति अचानक, बिना किसी चेतावनी या बीमारी के मृत्यु को प्राप्त होता है। तब पीछे रह गए लोगों को अपने भाव व्यक्त करने या क्षमा मांगने का अवसर नहीं मिलता। यह आकस्मिकता एक गहरा मनोवैज्ञानिक आघात पैदा करती है।

२. मनमुटाव के साथ विदाई: जब दो व्यक्तियों के बीच विवाद, गलतफ़हमी या कड़वाहट हो और उस कड़वाहट के दूर होने से पहले ही किसी की विदाई हो जाए। इस स्थिति में, शोक की भावनाएँ क्रोध, अपराधबोध और पछतावा बनकर व्यक्ति को अंदर ही अंदर दीमक की तरह खाती रहती हैं। "यदि मैंने ऐसा न कहा होता तो..." का स्थायी मानसिक दबाव यहाँ निर्मित होता है।

३. अधूरे संबंध की विदाई: इसमें किसी व्यक्ति का दूर चले जाना या रिश्ते का अप्रत्याशित रूप से टूट जाना शामिल है, जहाँ दोनों पक्षों में से किसी को भी समापन नहीं मिला। प्रेम, मित्रता या व्यावसायिक संबंध, जिनमें भविष्य की योजनाएँ या वादे अधूरे रह गए हों, यह विदाई आशा और निराशा के बीच झूलती रहती है।

मनोवैज्ञानिक प्रभाव और अपराधबोध

अधूरी विदाई का सबसे बड़ा बोझ मनोवैज्ञानिक होता है। मनुष्य का मन हमेशा बातों को एक तर्कसंगत अंत देने का प्रयास करता है। जब यह अंत नहीं मिलता, तब मन लगातार उस क्षण को फिर से जीने और सुधारने का प्रयत्न करता है, जिससे मानसिक शांति छिन्न-भिन्न हो जाती है।

'अधूरी विदाई' में अपराधबोध (Guilt) की भावना अत्यंत प्रबल होती है। दिवंगत व्यक्ति को अंतिम क्षणों में सहारा न दे पाने का, उसके अंतिम शब्द न सुन पाने का, या अतीत में की गई भूलों के लिए क्षमा न मांग पाने का अपराधबोध व्यक्ति को कचोटता रहता है। यह अपराधबोध मन की एक गहरी कसक बनकर रह जाता है, क्योंकि अब इसे मिटाने का कोई मार्ग शेष नहीं रहता।

विदाई की प्रक्रिया का अंतिम चरण 'स्वीकार' (Acceptance) है, परंतु समापन के अभाव में यह स्वीकार रुक जाता है। व्यक्ति का मन लगातार पूछता रहता है:

"उन्हें मुझसे अंतिम बात क्या कहनी थी?"
"ऐसा क्यों हुआ?"
"मैं क्या बदल सकता था?"

इन प्रश्नों का उत्तर न मिलने पर शोक एक बंधन बन जाता है, जो मृत व्यक्ति को अतीत में ही बाँधकर रखता है। इस स्थिति में, समय बीतने के साथ दुख भले ही कम हो जाए, पर 'कष्ट' स्थायी रहता है। यह कष्ट ऐसा है मानो जीवन की कोई अत्यंत महत्वपूर्ण बात सदा के लिए अनकही रह गई हो। यह कष्ट व्यक्ति के नए संबंधों में भी झांकता है, जिसके कारण वह नए जुड़ावों से दूर रहता है या उनमें अत्यधिक अपेक्षाएँ रखने लगता है।

किसी को खुद से दूर जाने से रोका नहीं जा सकता, पर समय बिना किसी को बताए अपनों को दूर कर देता है। संबंध हो, कोई वस्तु हो या कोई प्रिय व्यक्ति, समय उन्हें अपनों से ओझल कर ही देता है।

साहित्य में अधूरी विदाई: विरह की अमर यात्रा

गुजराती, भारतीय और वैश्विक साहित्य में 'अधूरी विदाई' करुण रस का एक महत्वपूर्ण स्रोत रही है। कवियों और लेखकों ने इस भाव को लेकर मानवीय मन की अतल गहराइयों को छुआ है।

काव्य में विरह: महाकवि कालिदास के 'मेघदूतम्' में, यक्ष का वियोग केवल भौगोलिक दूरी नहीं है, बल्कि एक स्थायी अधूरापन है, जिसमें यक्ष अपनी प्रियतमा को संदेश भेजकर भी अंतिम विदाई के शब्द नहीं कह पाता। कवि बख्शी की कहानियों में या चिनु मोदी की ग़ज़लों में अक्सर इस अनकहे बिछोह की वेदना देखने को मिलती है।

नाटक और उपन्यास: नाटकों या उपन्यासों में अधूरी विदाई एक शक्तिशाली 'प्लॉट डिवाइस' (Plot Device) है। जब कोई पात्र अपने लक्ष्य को प्राप्त किए बिना मृत्यु को प्राप्त होता है, या कोई रहस्य सुलझे बिना विदा लेता है, तो वह पीछे छूटे पात्रों को सदा के लिए एक मिशन या एक बोझ दे जाता है। यह अधूरापन कहानी के संघर्ष को अनंत काल तक बढ़ा देता है।

लोकगीतों में वेदना: लोकगीतों में, विशेषकर विरहगीतों में, इस अधूरेपन का भाव बार-बार झलकती है। सैनिक की, साधु की या परदेस गए पति की विदाई ऐसी होती है, जिसमें पीछे रह गई स्त्री को यह पता नहीं होता कि वह कब लौटेगा, और क्या वह अंतिम मिलन ही आखिरी था। यह अनिश्चितता ही 'अधूरी विदाई' का मुख्य सुर है।

दार्शनिक दृष्टिकोण: जीवन का अधूरा सत्य

दार्शनिक दृष्टिकोण से देखें तो अधूरी विदाई केवल एक दुर्घटना नहीं है, बल्कि जीवन की अपूर्णता के एक गहरे दार्शनिक सत्य का प्रतिबिंब है।

दर्शनशास्त्र मानता है कि 'अधूरी विदाई' के माध्यम से जो व्यक्ति जाता है, वह वास्तव में कभी नहीं जाता। यदि विदाई पूर्ण और संतोषजनक होती, तो स्मृति एक शांत, बंद पुस्तक बनकर रह जाती। परंतु अधूरी विदाई उस व्यक्ति की निरंतर, जीवंत उपस्थिति को बनाए रखती है। वह व्यक्ति भौतिक रूप से अनुपस्थित होने के बावजूद अधूरे शब्दों, अधूरी अपेक्षाओं और अनसुलझी भावनाओं के रूप में जीवित रहता है।

कहा जाता है कि जीवन स्वयं में एक अधूरी कथा है। हम कभी भी किसी घटना, किसी संबंध या किसी भावना को पूरी तरह से समझ या जी नहीं पाते। अधूरी विदाई हमें याद दिलाती है कि मानव संबंधों की सुंदरता उनकी क्षणभंगुरता और अपूर्णता में है। यह अधूरी विदाई हमें स्मृतियों के साम्राज्य में सदा के लिए बाँधकर रखती है।

दार्शनिक कहते हैं कि मन निरंतर अतीत का पुनर्निरमाण करता है। 'अधूरी विदाई' मन को अतीत में एक ऐसा काल्पनिक मार्ग खोजने पर मजबूर करती है, जहाँ वह अंतिम शब्द कह सके। यह आंतरिक संवाद एक प्रकार की आध्यात्मिक प्रक्रिया बन जाता है।

अधूरेपन से मुक्ति और स्वीकार

'अधूरी विदाई' के बंधन से बाहर निकलना आसान नहीं है, पर असंभव भी नहीं। यह मार्ग पूर्ण समापन (Closure) खोजने का नहीं, बल्कि अपूर्णता को स्वीकार करने का है।

१. अव्यक्त शब्दों को पत्र लिखना: जो व्यक्ति विदा ले चुका है, उसे संबोधित करके पत्र लिखना एक शक्तिशाली भावनात्मक उपचार है। इन पत्रों में वे सभी अनकहे शब्द, क्षमा और भावनाएँ व्यक्त की जा सकती हैं जो अंतिम क्षण में नहीं कही जा सकी थीं। यह पत्र किसी को भेजना नहीं होता; यह केवल मन के बोझ को हल्का करने के लिए है। इसके माध्यम से व्यक्ति अपने मन के भीतर 'विदाई' की प्रक्रिया को पूर्ण कर सकता है।

२. प्रतीकात्मक समापन: धार्मिक विधियों, स्मारक स्थलों या विशेष स्मृति-स्थानों पर जाकर मौन धारण करना भी प्रतीकात्मक समापन का एक हिस्सा है। ये क्रियाएँ मन को यह शांति देती हैं कि अब अंतिम शब्द कहे जा चुके हैं। इससे बिछड़े हुए व्यक्ति के प्रति उत्तरदायित्व का भार हल्का होता है।

३. अपूर्णता का स्वीकार: सबसे महत्वपूर्ण स्वीकार यह है कि जीवन में कुछ चीज़ों का अंत अधूरा ही रहने वाला है, और वही मानव अस्तित्व का सहज अंग है। 'अधूरी विदाई' को एक कष्ट के रूप में देखने के बजाय, उसे संबंध की गहराई और मज़बूती के प्रमाण के रूप में देखा जाना चाहिए। अब विदाई पूर्ण हो चुकी है—भले ही वह अंतिम क्षण में न हुई हो, पर समय के अनवरत बहाव में हो गई है।

निष्कर्ष

'अधूरी विदाई' मानवीय संवेदनाओं का एक ऐसा पड़ाव है, जहाँ अतीत का बंधन वर्तमान की शांति छीन लेता है। यह उन अनकहे शब्दों की गाथा है, जो सदा के लिए हृदय में गूँजते रहते हैं।

साहित्य में इसका वर्णन भले ही करुणामय हो, परंतु जीवन में यह एक सीख बनकर आता है—कि जो क्षण मिले, उसी में अपने भाव व्यक्त कर दो, क्योंकि कब कौन-सा रिश्ता मौन विदाई ले ले, यह कोई नहीं जानता।

इस प्रकार, अधूरी विदाई अंत नहीं है, बल्कि एक अनवरत संवाद है, जो व्यक्ति की अनुपस्थिति में भी हृदय में चलता रहता है। यह दुख का नहीं, बल्कि उन अमर स्मृतियों का उत्तराधिकार है, जिसे स्वीकार करने से ही परम शांति मिलती है।

[३] जन्मभूमि

"पवन से भी पतली क्षण में धंसकर घर बनाया है, जहाँ मेरी जन्मभूमि नहीं है, वहाँ कई स्मृतियाँ हैं।"

"जीवन के अनोखे क्षण को तराशकर घर बनाया है, जहाँ माता-पिता को एक-दूसरे से प्रेम करते देखा है; उनके समय का हर एक पल आँखों में छलकता है।"

"ग़ज़ल के शाही क्षण को सींचकर घर बनाया है, जहाँ खुशियों के आगे सभी दुखों को अनदेखा किया है।"

"संवेदनाओं के सफर को नापकर घर बनाया है, जहाँ वेदनाओं को वश में रखा है, एक-एक आँसू सोच-समझकर खर्च किया है।"

"पता है कि कभी भी हवा में से ईंटें गिर सकती हैं, फिर भी नींव में ईंट रखकर घर बनाया है; जहाँ घर में रहने वाले लोग गर्व से कह सकें कि मीठी नींद घर में नहीं, उस घर के लोगों के भाव में है—चाहे घर ईंटों से ही क्यों न चुना गया हो।"

हमारे गुजरात में छोटे अम्बाजी के नाम से प्रचलित खेडब्रह्मा के प्राकृतिक सौंदर्य के बीच सुशोभित राधीवाड़ गाँव केवल एक भौगोलिक स्थान नहीं है, बल्कि संस्कृति, शौर्य और शिक्षा की एक जीवंत विरासत है, जिसकी गाथा इसके हाईवे से शुरू होती है। इस हाईवे पर हवा में लहराते दो केसरिया ध्वज मानो इस भूमि के चरित्र की घोषणा करते हैं। एक ध्वज पर वीरता और स्वाभिमान के प्रतीक महाराणा प्रताप का चिह्न अंकित है; यह ध्वज केवल शौर्य की गाथा नहीं गाता, बल्कि हर सुबह राणा के प्रण और धर्म के लिए दिए गए बलिदान की प्रतिज्ञा का स्मरण कराता है, जो इस भूमि के राजपूत और क्षात्र धर्म की गहरी जड़ों की गवाही देता है। दूसरा ध्वज 'जय श्री राम' के उद्घोष के साथ न केवल आध्यात्मिक आस्था के शिखर के रूप में खड़ा है, बल्कि गाँव के हृदय में बसी सनातन संस्कृति की अखंडता का संकेत देता है। ये दोनों ध्वज राधीवाड़ की पहचान हैं—धर्म, आस्था और अडिग शौर्य के समन्वय की एक दिव्य ध्वजा।

हाईवे पर जब वाहनों का शोर राधीवाड़ की तरफ से ही मुड़ता है, तब आधुनिक समय का एक स्पर्श तुरंत दिखाई देता है: सी.एन.जी. (CNG) पंप पर गैस भरने के लिए के लिए लगी

वाहनों की लंबी कतारें... इस कतार में खेतों से आते ट्रैक्टर, स्थानीय व्यापारियों की मालवाहक गाड़ियाँ और शहर की और जाती निजी कारों का सम्मिश्रण राधीवाड़ की आर्थिक गतिशीलता और विकास के प्रवाह की झलक देता है। इस आधुनिक आपाधापी के ठीक सामने, गाँव के प्रवेश द्वार के केंद्र में परंपरा का हृदय धड़कता है। गाँव के भीतर बने विशाल चबूतरा (ओटलों) पर आज की युवा पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी एक साथ बैठी दिखाई देती है, जहाँ बुजुर्गों की आँखों में वर्षों का अनुभव और युवाओं की हँसी में नई आशाओं का उदय दिखता है। यहाँ बुजुर्ग अपने कृषि के प्राचीन ज्ञान, पशुपालन के तरीकों और इडर शहर की न्याय-व्यवस्था की कहानियाँ सुनाते हैं, जबकि युवा अपने प्रोजेक्ट्स, नई तकनीक और प्रतियोगी परीक्षाओं की बातें साझा करते हैं। यह ओतला, आधुनिकता के तूफान के सामने भी, सामाजिक सद्भाव और पारिवारिक बंधनों को अखंड रखने वाला एक गढ़ है—राधीवाड़ की सामाजिक यूनिवर्सिटी।

"जीवन के सुंदर पल को याद करके जब रोना आता है, तब मेरे हृदय की धड़कनें मुझे दिशा दिखाती हैं;

कुछ खो जाए तो उसे खोजा जा सकता है, पर इंसान खो जाए तो उसे ढूँढा नहीं जा सकता, केवल दो पल उसे याद करके मन हल्का किया जा सकता है।"

गाँव के जीवन की एक महत्वपूर्ण धड़कन बस स्टैंड पर महसूस होती है, जहाँ स्कूल के बच्चे बस की प्रतीक्षा में खड़े होते हैं। उनके चेहरों पर ज्ञान प्राप्ति की उत्सुकता और भविष्य के सपने झलकते हैं। गाँव का विद्यालय, जिसकी स्थापना १९२६ में केवल आठवीं कक्षा तक हुई थी, वह केवल एक इमारत नहीं, बल्कि इडर शहर के उस दौर की शैक्षणिक अग्रसरता का जीवंत प्रमाण है। इस विद्यालय की फ्रंट सीट पर बैठने वाले हों या बैक बेंचर्स, उन विद्यार्थियों ने केवल डिग्रियां ही हासिल नहीं कीं, बल्कि स्वतंत्रता पूर्व के काल में जनजागृति फैलाने का कार्य भी किया, जिसके कारण राधीवाड़ आसपास के क्षेत्र में 'शिक्षा के अग्रसर गाँव' के रूप में जाना जाता था। इस स्कूल परिसर में ही महावीर दादा का प्राचीन मंदिर स्थित है, जो यह दर्शाता है कि इस भूमि में शिक्षा और धर्म कभी एक-दूसरे से विमुख नहीं हुए, बल्कि एक-दूसरे के पूरक बने रहे।

गाँव के मध्य में प्रवेश करते ही लक्ष्मी नारायण जी का वर्षों पुराना मंदिर नज़र आता है। यह मंदिर गाँव की आध्यात्मिक धुरी है, जिसकी प्राचीन स्थापत्य कला, नक्काशी और सुबह-शाम की आरती के घंटानाद से गाँव को एक शांतिपूर्ण लय मिलती है। इस भव्य मंदिर के

ठीक सामने 'देरावाला कुआँ' स्थित है। यह कुआँ भले ही अब कम उपयोग में आता हो, पर इसके पत्थरों पर महिलाओं के पानी के मटकों के घिसने के निशान अतीत के परिश्रम और सामाजिक जीवन के केंद्र के रूप में इसकी भूमिका की याद दिलाते हैं—जहाँ घूँघट वाली महिलाओं का मिलन होता था और जीवन की बातें बहती थीं। जल की यह गाथा गाँव के छोर तक फैली हुई है, जहाँ एक विशाल और भव्य बावड़ी (स्टेपवेल) स्थित है। यह बावड़ी गाँव की जीवनरेखा समान है। अतीत में जब जल के अन्य स्रोत बेहद कम थे, तब यह बावड़ी महाकाली के आशीर्वाद समान बनकर राधीवाड़ को जीवन देती थी। इसके शिल्प और सीढ़ियाँ गुजरात की प्राचीन जल-स्थापत्य कला का उत्कृष्ट नमूना हैं। गाँव के आसपास के भूगोल में गहराई से उतरें तो जहाँ वर्षों पहले पुराना गाँव बसा हुआ था, वहाँ करहण माँ का मंदिर स्थित है, जो गाँव के मूल स्थान और उसके आद्यशक्ति के स्वरूप के साथ जुड़ाव को बनाए रखता है।

राधीवाड़ के धार्मिक आस्था के केंद्र केवल गाँव तक सीमित नहीं हैं, बल्कि हाईवे पर भी फैले हुए हैं। हाईवे पर पंचदेव और रामदेवपीर का मंदिर स्थित है, जो विभिन्न देवताओं का एकीकरण कर भक्तों को शांति प्रदान करता है। धर्म और श्रद्धा के इस प्रवाह में एक अद्वितीय स्थान है—सतीधरा का मंदिर। प्राथमिक विद्यालय के पास स्थित यह मंदिर एक राजपूताणी की वीरता और पतिव्रता की पराकाष्ठा का प्रतीक है। जिस राजपूताणी ने अपने पति के शव को गोद में रखकर सतीत्व का महान बलिदान दिया, उनकी पवित्रता गाँव के प्रत्येक निवासी के हृदय में नैतिकता और समर्पण का दीपक जलाती है। यहाँ होली के त्योहार पर लोकमेला भरता है, जो गाँव की एकता और गौरव की कड़ी समान है, और 'सतीधरा' नाम ही इस गाँव की पवित्र मिट्टी की पहचान बन गया है।

गाँव की समृद्धि का दूसरा प्रतीक इसके दो तालाब हैं—घोटी और घोमेरु। ये तालाब केवल जल संरक्षण के लिए नहीं, बल्कि गाँव के सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास के साक्षी हैं। विशेष रूप से घोटी तालाब की मिट्टी की बात अद्भुत है। इस मिट्टी की खासियत इसकी अद्भुत बंधन-क्षमता और शुद्धता थी, जिसके कारण इसे मुंबई जैसे दूरदराज़ के शहरों में निर्माण कार्य और रंग-रोगन के लिए ले जाया जाता था—जो राधीवाड़ के प्राकृतिक संसाधनों की गुणवत्ता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। घोमेरु तालाब, मुंबई के निर्माण कार्य से सर्वथा विपरीत, शांति और प्रकृति का धाम है।

परंतु, राधीवाड़ का सच्चा गौरव इसकी भव्य इमारतों या तालाबों में नहीं, बल्कि इसकी धरती पर जन्मे असंख्य कर्मवीरों में है। इस भूमि ने शिक्षकों, पुलिस अधिकारियों, वकीलों,

पत्रकारों, डॉक्टरों, प्रोफेसरों, इंजीनियरों और भारतीय सेना के जवानों जैसे कर्मवीरों को जन्म दिया है। इनमें से प्रत्येक व्यक्ति अपने क्षेत्र में राधीवाड़ की संस्कृति और संस्कारों का प्रतिनिधित्व करता है। उनका सबसे बड़ा योगदान यह है कि वे अपना ऋण चुकाने के लिए बार-बार गाँव लौटते हैं; छुट्टियों में डॉक्टर मुफ्त स्वास्थ्य शिविर आयोजित करते हैं, इंजीनियर स्थानीय जल प्रबंधन को सुधारने में मदद करते हैं, और शिक्षक स्कूल के विद्यार्थियों को मार्गदर्शन देते हैं तथा अन्य छात्रों की भी सहायता करते हुए मैंने उन्हें देखा है। यह उनकी जन्मभूमि के प्रति निष्ठा और कर्मयोग का सच्चा अर्थ दर्शाता है। राधीवाड़ वास्तव में खेडब्रह्मा के सौंदर्य के बीच खिलता हुआ धर्म, इतिहास और प्रगति का त्रिवेणी संगम है। इस गाँव की रज-रज में वीरता की एक गाथा, भक्ति की एक धुन और विकास का एक सपना समाया हुआ है।

विदाई वह है, जहाँ क्षमा और श्रेष्ठता के बीच का संबंध गहरा होता है।

आपकी उपस्थिति से था आनंद का वातावरण,
अब यादों में रहेगा आपका मुस्कुराता चेहरा,
विदाई है पर यह जुड़ाव अटूट रहेगा,
क्योंकि हृदय का संबंध कभी नहीं टूटता...

"जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर हैं, फिर भी पिता की छाया से धूप ढकी रहती है।"

[४] संघर्ष और सफलता का सूर्यास्त

ज़िंदगी एक ऐसा मंच है जहाँ पर्दे के पीछे के घाव कोई नहीं देखता, दुनिया तो बस तालियों की गड़गड़ाहट से ही परिचित होती है। यहाँ सुबह होते ही सबसे पहला सवाल यही होता है: 'कितना कमाया?' सवाल यह नहीं होता कि 'रात भर जागकर कितना संघर्ष किया?' इंसान की कीमत उसके वेतन-पत्रक (Pay Slip) से आँकी जाती है, उसके माथे के पसीने से नहीं। यहाँ व्यक्ति का संघर्ष उसकी व्यक्तिगत संपत्ति बनकर रह जाता है, जिसका सार्वजनिक प्रदर्शन नहीं किया जा सकता।

जब आप सफलता के शिखर पर खड़े होते हैं, तब नीचे खड़े हर व्यक्ति की आँखों में बस एक ही चमक होती है: "वाह! कितनी मौज है; कैसे जलवे हैं!" वे मानते हैं कि यह जीवन कोई दैवीय वरदान है, जो बस यूँ ही, आसानी से, सोने की थाली में परोस दिया गया है। पर वे कहाँ जानते हैं ‘कि इस मौजो के पीछे कितनी ही 'लहरें' समाई हुई हैं; कितनी ही रातों की नींद कुर्बान हुई है, कितने ही सपने अधूरे छोड़े गए हैं और कितने ही अपनों का स्नेह खो दिया गया है। यह एक ऐसी यात्रा है, जिसका सफ़र केवल एक ही व्यक्ति ने अकेले दम पर तय किया है।

> "पूछती है पूरी दुनिया वेतन, कोई संघर्ष की बात नहीं करता,
> इस मुकाम के पीछे डूबे सूरज का पता कोई नहीं खोजता।
> चमकती चाँदी के नीचे छिपा ज़ंग तो मालिक ही जानता है,
> ताली बजाने वालों को क्या ख़बर, कि रातें कैसे सहनी पड़ती हैं!"

संघर्ष केवल एक शब्द नहीं है, यह एक ऐसा अंधकारमय कमरा है जहाँ दीवारें भी आपका साथ छोड़ देती हैं। सफलता के शिखर पर पहुँचने से पहले इंसान एक अनजान और डरावनी घाटी से गुज़रता है, जहाँ इस बात का भी भान नहीं होता कि उस घाटी से वापस लौट पाएँगे या नहीं। पहला संघर्ष अपने स्वयं के अस्तित्व से शुरू होता है, जहाँ कमज़ोरियों का बोझ कंधों पर पत्थर की तरह रखा होता है। फिर आता है कीमती समय और अमूल्य संसाधनों का संघर्ष। लोगों की आलोचना, रिश्तेदारों के ताने और दोस्तों द्वारा पीठ दिखा देने की कला—मानो साँप को दूध पिलाते हुए हमारी ही हत्या हो जाए—यह सब ज़हर के घूँट की तरह पीना पड़ता है। जब आप चुनौतियों का सामना करने बाहर निकलते हैं, तो सबसे पहले आपके

अपने ही लोगों की आवाज़ें आपको पीछे खींचती हैं: "इससे नहीं होगा," "इसमें कोई भविष्य नहीं है," "ज़िंदगी बर्बाद कर ली!" ये वाक्य केवल शब्द नहीं हैं, ये आत्मविश्वास को छलनी करने वाले तीखे तीर हैं।

"अकेलेपन की चादर ओढ़कर मैंने रातों से संवाद किया है,
थके हुए पाँव होते हुए भी मन को लड़ने के लिए तैयार किया है।
लोग कहते हैं कि अब तो किस्मत का 'सितारा' चमक रहा है आपका,
पर पूछो तो सही, इस घर को बनाने में... मैंने कितना त्याग किया है?"

संघर्ष के इन दिनों में भूख कम लगती है और सपने बड़े होते जाते हैं। कभी भूखे पेट भी दिमाग़ आँकड़ों की गिनती करता रहता है, तो कभी गरीबी के कारण कोई अच्छी किताब भी नहीं खरीदी जा पाती। और फिर, एक दिन वह क्षण आता है—एक लंबी, अंधकारमय सुरंग के बाद प्रकाश दिखाई देता है। नाम के आगे 'साहब' लग जाता है, कहावत है न "दाम बिना नाथा, दाम से नत्थूलाल"—गाड़ी और रहने का ठिकाना बदल जाता है। और यह सब होते ही कुदरत का नियम पलट जाता है। जिन लोगों ने कल तक दरवाज़े बंद कर लिए थे, वे आज लाल कालीन बिछाकर खड़े रहते हैं।

पर सफलता का यह ताज पहनना एक अजीब अनुभव है। सफलता आपको अकेला कर देती है, क्योंकि अब लोग आपके पैसों के आसपास हैं, आपके व्यक्तित्व के आसपास नहीं। लोग केवल वेतन की बात करते हैं: "उसे तो लाख रुपये मिलते हैं, क्या मोज़ है उसकी ज़िंदगी में!" वे इस 'लाख' तक पहुँचने के लिए सहे गए कष्टों की बात कभी नहीं करेंगे।

"सिक्कों की खनक अब तो बहुत बड़ी लगती है,
पर उस आँसू की मौन आवाज़ को अब सुनता कौन है?
पत्थर बनकर खड़ा रहा था जब पूरा आसमान बरस रहा था,
उस घड़ी के भारी बोझ को अब आकर पूछता कौन है?"

संघर्ष की लंबी रात खत्म हुई और सफलता का सूरज उगा। अब वह समय था जब ज़िंदगी सचमुच 'आनंदमयी' लगने लगी थी। थकावट दूर हो चुकी थी और एक नई ऊर्जा जीवन जीने के लिए तैयार थी। पर यह शांति कितनी क्षणिक थी! यह युद्धविराम कितना छोटा था! सालों तक जो व्यक्ति केवल एक मशीन की तरह जिया, जिसने सोचा था कि अब सुबह की चाय शांति से पी जाएगी और शाम का सूर्यास्त सुकून से देखा जाएगा, वहीं नीयति ने अपना खेल खेल दिया।

नीयति तो बस देख रही थी कि यह इंसान कब अपने ताज के बोझ से मुक्त होकर जीवन का आनंद लेना शुरू करता है। और जैसे ही वह उस आनंद की पहली साँस भरता है, वहीं साँसें छीन ली जाती हैं। मानो कुदरत ने कहा हो: 'तू संघर्ष में सुंदर था, तेरी यह शांति मुझे पसंद नहीं।' यह कैसा अन्याय! जिसने पूरी ज़िंदगी अपने परिवार को सँभालने में खुद सजा काटी, उसे पुरस्कार का समय ही नहीं मिला। सफलता तो मिली, पर उसे जीने का अवसर नहीं मिला। यही अदृश्य नीयति की सबसे बड़ी क्रूरता है।

"सारे सपने सिमट गए, सारी पीड़ाएँ शांत हो गईं,
जब जीत का जश्न शुरू हुआ, तभी विदाई क्यों हो गई?
एक ही साँस कम पड़ी और पूरी दुनिया बदल गई,
सालों का संघर्ष रंग लाया, पर सुकून की घड़ी अधूरी रह गई।"

यह 'अधूरी विदाई' केवल एक व्यक्ति की कहानी नहीं है, बल्कि समय की एक कलाकारी है। यह एक कड़वा सच है कि जो जीतने के लिए पैदा हुआ था, वह जीत तो गया पर जश्न लंबा नहीं चल सका। यह एक ऐसी यात्रा है जिसका नायक मुकाम पर पहुँचने के तुरंत बाद ही पर्दा गिरा देता है और दुनिया को सोचने पर मजबूर कर देता है कि क्या सचमुच यह सब इतना ही था?

"ज़िंदगी सपने पूरे करने के लिए मिली थी, यह बात सच है,
पर सपनों के पीछे भागने में ही ज़िंदगी कहीं अधूरी रह गई।
संघर्ष को सम्मान मिला पर शांति का समय कम पड़ गया,

विदाई अधूरी रह गई, पर पिताजी आपकी यादें दिल के एक ऐसे कोने में रह गईं जो कभी आपको भूल नहीं सकता।"

"यह 'अधूरी विदाई' हर संघर्ष करने वाले इंसान के दिल में गूँजती है और कह जाती है कि जीवन में सब कुछ मिलता है, पर सही समय पर कुछ नहीं मिलता।"

[५] संघर्ष का सूर्य और सपनों की शाम

एक अक्षर-यात्रा

यह कथा है एक ऐसी आत्मा की जिसने समय के बहाव में बह जाने के बजाय, अपने लिए एक नया मार्ग प्रशस्त किया। यह कहानी है एक ऐसे बालक की जिसका बचपन धूल और धूप में बीता, पर उसकी आँखों में पुस्तकों का तेज था। १६ मार्च, १९६६ के दिन राधीवाड़ की पावन धरती पर एक ऐसे सूर्य का उदय हुआ, जिसकी रोशनी आने वाले वर्षों में संघर्ष के बादलों को चीरकर आगे बढ़ने वाली थी। यह केवल एक जन्मतिथि नहीं थी, बल्कि एक ऐसे युग का प्रारंभ था जहाँ कड़ी मेहनत और ज्ञान का संगम होने वाला था।

"किस्मत की लकीरों में संघर्ष भले ही लिखा था,
फिर भी हृदय में एक अनजाना सपना सहेजा था।
सुबह धूल झाड़ी, रात को मैंने दीप जलाया,
अंधियारा तो बस मेरी राह को रोशन करने आया था।"

इस घर में कुल छह संतानें थीं—पाँच भाई और एक बड़ी बहन। बड़े परिवार का बोझ और जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं के बीच का खिंचाव स्पष्ट था। बड़ी बहन का स्नेह, दो बड़े भाइयों की छत्रछाया और दो छोटे भाइयों की निष्छलता इस संघर्षमय जीवन का आंतरिक आधार स्तंभ थी। इस बालक के लिए बचपन का अर्थ मौज-मस्ती नहीं, बल्कि ज़िम्मेदारी का दूसरा नाम था। घर की गायों-भैंसों की देखभाल करना और खेत में जाकर दिन भर उन पर नज़र रखना—यही उनकी प्राथमिक पाठशाला थी।

बचपन का जीवन संघर्षों से भरा हुआ था। यह संघर्ष केवल आर्थिक तंगी नहीं, बल्कि अपने अस्तित्व को बनाए रखने की जंग थी। खेत की मिट्टी, घास की सोंधी महक और मवेशियों के गले में बंधी घंटी की आवाज़—यही उनके बचपन का संगीत था।

"सुबह का सफ़र था, खेत तक जाना,

ज़िंदगी का सबक था, धूल में खेलते हुए सीखना।
हाथ में लाठी थी और कंधों पर ज़िम्मेदारी,
बचपन कहाँ था? वह तो संघर्ष की तैयारी थी।"

दिन भर की इस कठिन मेहनत के बाद थकावट स्वाभाविक थी। शाम को लौटकर घर के कामों में हाथ बँटाने के बाद जब परिवार के सभी सदस्य—माता-पिता, बहन और भाई—गहरी नींद में सो जाते, तब इस बालक की सच्ची जागृति शुरू होती थी। वे अंधकार में दीये की मध्यम लौ का सहारा लेते। वह दीया केवल प्रकाश का स्रोत नहीं था, उनकी आशाओं का प्रतीक था। उनका दृढ़ विश्वास था कि भले ही शरीर मिट्टी में रचा-बसा हो, पर मन को तो अक्षरों की दुनिया में विचरण करना चाहिए।

"जब सब सोते थे तब उनके सपने जागते थे,
दीये की रोशनी में भविष्य के रंग घुलते थे।
थका हुआ शरीर था, पर मन अडिग था,
क्योंकि अक्षरों में उन्होंने जीवन का अमृत चखा था।"

प्राथमिक शिक्षा का पहला पड़ाव राधीवाड़ गाँव की शाला थी। पर असली चुनौती तब आई जब उन्होंने माध्यमिक शिक्षा के लिए के.टी. (K.T) हाईस्कूल, खेडब्रह्मा जाने का निर्णय लिया। खेडब्रह्मा का यह विद्यालय उनके गाँव से पाँच किलोमीटर दूर था। रोज़ पाँच किलोमीटर पैदल जाना और पाँच किलोमीटर वापस आना—प्रतिदिन दस किलोमीटर की पैदल यात्रा। वर्षा ऋतु में कीचड़, भीषण गर्मी में कड़कड़ाती धूप और सर्दियों में ठिठुरती ठंड; बिना जूतों के चलना मानो प्रकृति के सामने एक दैनिक परीक्षा थी।

"पाँच किलोमीटर की पगडंडी और दिल में एक आवाज़,
पाँव थके फिर भी मन कहे—चल आज।
रास्ता कठिन था, पर मंज़िल थी साफ़,
स्कूल का द्वार मेरा, जहाँ मिले ज्ञान का ताज।"

इन दैनिक संघर्षों ने उनके चरित्र का निर्माण किया। मवेशियों को सँभालने की ज़िम्मेदारी ने उन्हें धैर्य सिखाया, देर रात तक की पढ़ाई ने एकाग्रता दी और गरीबी ने दूसरों के प्रति करुणा सिखाई। विद्यालय में वे हमेशा शीर्ष पर रहने का प्रयास करते, क्योंकि वे जानते थे कि उन्होंने अपनी शिक्षा के लिए कितना बड़ा त्याग किया है।

"पेट में भूख थी और आँखों में सपनों की प्यास,
जीना था शान से, न कि सिर्फ़ काटने के लिए।
कठिन था रास्ता पर इरादा था मक़सद से भरा,
उस संघर्ष की आग से, चरित्र को निखारा ज़रा।"

खेडब्रह्मा का के.टी. हाईस्कूल उनके लिए केवल एक इमारत नहीं, एक मंदिर था। सुबह के सूर्य की पहली किरण के साथ उनका सफ़र शुरू होता और शाम को ढलते सूरज के साथ पूरा होता। उनके पैरों में कभी थकान का अहसास नहीं होता था, क्योंकि मन में उज्ज्वल भविष्य के सपने थे।

"सूरज तपे तो क्या हुआ, वे धूप के आदी हैं,
थके पाँवों में उन्होंने मंज़िल की उम्मीद बाँधी है।
पाँच किलोमीटर की राह, वही तो उनकी पाठशाला थी,
जहाँ उन्होंने संघर्ष की कविता के पन्ने पढ़े थे।"

जब मानव शरीर हार मान लेता था, तब उनकी चेतना विद्रोह कर उठती थी। उन्होंने अध्ययन को अपनी ऊर्जा का स्रोत बनाया। यदि वे भी अन्य बच्चों की तरह रात में सो गए होते, तो शायद यह संघर्ष-गाथा अधूरी रह जाती। उनके जीवन में सूर्य संघर्ष लेकर आता था, जबकि चंद्रमा शांति और ज्ञान लेकर आता था।

"कोई पूछे उनसे कि आपका गुरु कौन है?
कहूँगा—रात का अँधेरा, जो दीये की लौ से पूछता है।
संघर्ष में जिसने पढ़ा, उसकी किस्मत खुलती है,
अक्षर की आराधना से ही जीवन की भोर खिलती है।"

राधीवाड़ की धूल और खेडब्रह्मा के रास्तों ने उनके भविष्य के निर्माण में मदद की। भौतिक सुविधाओं के अभाव में भी मन की शक्ति और दृढ़ संकल्प के बल पर उन्होंने ऊँचाइयों को हासिल किया। हाईस्कूल की शिक्षा पूरी करके इस युवा ने न केवल डिग्री प्राप्त की, बल्कि संघर्ष से तपा हुआ एक मज़बूत व्यक्तित्व अर्जित किया।

"जैसा जग था वैसा देखा, फिर भी शिकायत न की,
शब्दों को शांत रखा और सपनों की शुरुआत की।
यह पथ कठिन था पर प्रभु ने पंछी के पाँव दिए,
उस दस किलोमीटर की पगडंडी पर ज़िंदगी के अर्थ लिए।"

वर्ष बीतते गए और १६ मार्च, १९६६ को जन्मे उस बालक ने अब एक नवयुवक का रूप ले लिया। उनके चेहरे पर विजय के चिह्न थे। जब भी कोई कठिनाई आती, वे बचपन के उन दृश्यों को याद करते—मवेशी चराने का अनुशासन, रात को पढ़ने की ज्ञान-पिपासा और दस

किलोमीटर चलने का धैर्य। उन्हें समझ आ गया कि जीवन की सबसे बड़ी कमाई कठिन समय में टिके रहने की क्षमता है।

"लोग कहते हैं कि आपका जीवन संघर्ष का वृक्ष था,
पर मैं कहता हूँ कि वह आपके संकल्प का पर्वत था।
अब पीछे देखता हूँ तो एक बात समझ आती है,
मैं कलम का सैनिक हूँ और आपका भविष्य आज़ाद था।"

यह यात्रा एक अनत प्रेरणा का स्रोत है। उन्होंने सिद्ध कर दिया कि मेरी जड़ें कहाँ हैं यह महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि मेरा लक्ष्य कहाँ है यह महत्वपूर्ण है। यह कथा यहाँ समाप्त नहीं होती, यह तो एक नई शुरुआत है।

"संघर्ष के सूर्य की साक्षी में उन्होंने सपने देखे थे,
प्रकाश की हर किरण में उन्होंने अक्षर पिरोए थे।
बचपन की सारी थकान को आज वे भूल गए थे,
क्योंकि उसी थकावट ने तो उनके भाग्य के द्वार खोले थे।"

"वह ज्ञान, वह संघर्ष और वह दस किलोमीटर की यात्रा—आज भी जीवन का सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है।"

[६] साबरकांठा जिले का मुख्य मथक हिम्मतनगर कॉलेज और राजपूत बोर्डिंग के संस्मरण

कक्षा १२वीं उत्तीर्ण करने के बाद की आपकी यात्रा केवल एक शैक्षणिक सफ़र न होकर, जीवन-निर्माण की एक पवित्र यात्रा थी। जब आपने हिम्मतनगर कॉलेज में गुजराती और राजनीति विज्ञान (Statecraft/Political Science) जैसे महत्वपूर्ण विषयों के साथ प्रवेश लिया, तब आपके परिवार की विद्वता और विरासत की छाया आपके साथ थी। आपके दादाजी श्री मूलसिंह चौहान, विसनगर के एम.एन. आर्ट्स कॉलेज में प्रोफेसर थे और इसी कारण आपको हिम्मतनगर की राजपूत बोर्डिंग में रहने की अमूल्य व्यवस्था प्राप्त हुई। यह केवल एक आवास स्थान नहीं, बल्कि संस्कार और सहकार का केंद्र था। यह समय आपके व्यक्तित्व के विकास की आधारशिला साबित हुआ, जहाँ सादगी, परिश्रम और मित्रता का त्रिवेणी संगम हुआ।

> "गाँव से आकर जब शहर की धूल चखी तब अहसास हुआ,
> बोर्डिंग का वह कोना मानो किसी मंदिर का द्वार था।
> गरीबी में जिया पर संतोष से परिपूर्ण था,
> दादाजी की छाया में मिला आश्रय, वही तो हमारा संसार था।"

राजपूत बोर्डिंग के नाम में भले ही 'राजपूत' शब्द था, परंतु उसकी वास्तविक पहचान सादगी और अनुशासन से थी। भव्यता के स्थान पर यहाँ आत्मीयता का वास था। प्रोफेसर मूलसिंह चौहान के नाम पर मिली यह जगह आपके लिए एक बड़ा सम्मान और ज़िम्मेदारी लेकर आई थी। यहाँ का वातावरण ऐसा था मानो परिवार के बुजुर्गों की छत्रछाया में अध्ययन हो रहा हो। बोर्डिंग के इस जीवन में आपको अपने गृहनगर के मित्र श्री कपिलकुमार हर्षदराय उपाध्याय का साथ मिला। कपिलकुमार का साथ ऐसा था कि पढ़ाई का बोझ भी हल्का हो जाता था। कमरे का वह छोटा-सा स्थान, रात को जागकर की गई पढ़ाई और एक-दूसरे की कठिनाइयों में सहायक बनने की भावना इस मित्रता को अनूठा बनाती है।

"साथ रहकर हमने किताबों के पन्ने पलटे थे,
छोटे-से कमरे में भविष्य के बड़े महल सहेजे थे।
मित्रता की उस आँच में ठंडी रातें भी गुनगुनी लगती थीं,
संघर्ष के उन दिनों में ही हमने सच्चे इंसान गढ़े थे।"

बोर्डिंग के भोजन की बात करें तो वह कभी पकवानों की श्रेणी में नहीं आता था, परंतु वह भूख मिटाने की आवश्यकता अवश्य पूरी करता था। सुबह बाजरे की रोटी और छाछ, दोपहर में सादा साग-रोटी और रात को दाल-चावल। इस भोजन में स्वाद भले ही कम था, परंतु इसके हर निवाले में श्रम और सादगी का संतोष था। सभी मित्र एक साथ बैठकर अपने-अपने घर की यादें ताज़ा करते और आने वाले कल के सपने देखते। इस भोजन के दौरान ही कभी राजनीति विज्ञान के कठिन मुद्दों पर चर्चा होती, तो कभी गुजराती साहित्य की रोचक बातें होती थीं।

"वह भोजन कहाँ था? वह तो संघर्ष का सच्चा स्वाद था,
हर निवाले ने सिखाया कि जीवन में संतोष ही आशीर्वाद था।
रोटी की वह कड़क कोर और छाछ की ताज़गी आज भी याद है,
क्योंकि उसमें ममता नहीं, पर कुछ कर गुज़रने की चाह थी।"

हिम्मतनगर कॉलेज में गुजराती और राजनीति विज्ञान विषय का आपका चयन यह दर्शाता है कि आपको साहित्य की संवेदनशीलता और शासन के सिद्धांतों में गहरा रस था। गुजराती की कक्षाओं में आपने शब्दों की शक्ति को पहचाना और संवेदनाओं को कागज़ पर उतारना सीखा। दूसरी ओर, राजनीति विज्ञान की कक्षाओं में लोकतंत्र और संविधान का ज्ञान प्राप्त किया, जिसने आपको एक ज़िम्मेदार नागरिक और कुशल शिक्षक बनाने में मदद की।

"कॉलेज का कमाल था और किताबों की अपार दुनिया थी,
गुजराती का गौरव और राजनीति विज्ञान की चर्चा थी।
बोर्डिंग की रातों में जो सपने संजोए थे,
वही ज्ञान की जोत आज पूरे परिवार की सौगात थी।"

आपके कॉलेज जीवन के इस चरण के दौरान जीवन का एक अत्यंत महत्वपूर्ण और पवित्र प्रसंग—आपकी सगाई संपन्न हुई। पढ़ाई की आपाधापी के बीच व्यक्तिगत जीवन का यह मोड़ एक नई आशा और उमंग लेकर आया। कॉलेज के एक युवा और महत्वाकांक्षी विद्यार्थी के रूप में इस घटना ने आपके जीवन में स्थिरता और नई ज़िम्मेदारी की भावना का संचार

किया। इस प्रसंग ने सिद्ध कर दिया कि अब आप केवल एक विद्यार्थी नहीं हैं, बल्कि जीवन के एक नए पड़ाव की ओर कदम बढ़ा रहे हैं।

"एक हाथ में डिग्री का सपना और दूसरे में जीवन भर का साथ था,
सगाई के उस शुभ अवसर पर विधाता का भी हाथ था।
किताबों के बोझ के बीच वह वचन का बंधन मधुर लगा,
ज़िम्मेदारी का वही अहसास जीवन का असली सबक था।"

आपका हिम्मतनगर का कॉलेज काल सादगी, संघर्ष और उपलब्धि की गाथा है। राजपूत बोर्डिंग का सादा जीवन, दादाजी की विरासत, कपिलकुमार जैसे मित्र का निष्ठावान साथ और युवावस्था में ही सगाई की ज़िम्मेदारी—इन सबने मिलकर आपके व्यक्तित्व को एक अनूठी पहचान दी। आपने सीखा कि सफलता का मार्ग किसी महल से नहीं, बल्कि बोर्डिंग के एक साधारण से कमरे से होकर भी गुज़र सकता है।

"जिस बोर्डिंग की दीवारों में हमने सपने बोए थे,
उन्हीं मित्रों के साथ से जीवन के मर्म को समझा था।
विदाई तो ले ली वहाँ से पर यादें आज भी दिल में ताज़ा हैं,
"आपकी वह पवित्र यात्रा हम सभी के लिए एक महान प्रेरणा स्रोत है।"

[७] परीक्षा: एक संघर्ष की कथा

यह सुबह कोई साधारण सुबह नहीं थी; यह एक युग का समापन और दूसरे युग का आरंभ थी। इस दिन, एक नवयुवक अपने जीवन की दो सबसे बड़ी घटनाओं के बीच खड़ा था। एक तरफ, भविष्य की नींव मानी जाने वाली कॉलेज डिग्री का अंतिम, निर्णायक यूनिवर्सिटी का पेपर। दूसरी तरफ, उसके नए जीवन की शुरुआत। २१ वर्ष के उस युवक के लिए १९८६ का वर्ष युगों जैसा लंबा हो गया था। वह केवल एक वर्ष नहीं था, वह तो समय की ऐसी कसौटी थी, जिसने भविष्य और वर्तमान को एक ही तराजू पर रख दिया था।

उस दौर की वह कैसी नासमझ भरी व्यवस्था थी की जीवन की सबसे बड़ी परीक्षा—भविष्य की नींव रखने वाले डिग्री के पेपर—और जीवन का सबसे बड़ा उत्सव—उनके विवाह—एक ही दिन आ खड़े हुए थे! उस दिन अवकाश में सूर्य भी पूरी तरह निकला भी नहीं था, पर घर के आँगन में उत्सव का माहौल चरम सीमा पर था। ढोल, नागारे बज रहे थे, पर उन ढोलों की आवाज़ में उन्हें कोई खुशी की धुन सुनाई नहीं दे रही थी। उनके लिए तो उस आवाज़ में एक असहनीय बेसुरापन था, मानो अनिश्चितता का कोई नगारा बज रहा हो। उत्सव की चादर ओढ़कर आँगन खड़ा था, पर उस चादर के नीचे उनके मन में भय और चिंता का अंधकार छाया हुआ था।

उनके अपने विवाह का दिन! घर में उत्सव का माहौल था, पर हवा में एक तनावपूर्ण मौन पसरा था। बाहर रंग-बिरंगी रोशनियाँ, फूलों की महक और वरयात्रा (बारात) के लिए तैयार बैंड की बाँसुरियाँ शांत थीं—मानो सभी उस युवक की प्रतीक्षा कर रहे हों। वे एक कमरे में शेरवानी नहीं, बल्कि सफेद शर्ट और फॉर्मल पैंट में तैयार खड़े थे। उनके हाथ में विवाह की कटार के बजाय किताब थी, और हृदय में बारात जोड़ने के उत्साह के बजाय परीक्षा की गंभीर चिंता थी।

बहू की राह देखती माता-जी सुबह की पूजा पूरी करके घर में आईं। उनकी आँखों में गर्व और वेदना दोनों झलक रहे थे। उन्होंने कहा कुछ नहीं, पर वे जानती थीं कि विवाह की यह तिथि बहुत पहले निकाली गई थी—यूनिवर्सिटी के अनिश्चित शेड्यूल की जानकारी के बिना। जब तिथियाँ टकराईं, तब परिवार ने विवाह स्थगित करने का सुझाव दिया था, पर उन्होंने दृढ़ता से मना कर दिया। उन्होंने कहा था, "मेरी शिक्षा का संघर्ष मेरे विवाह के उत्सव के दिन तक

खिंच आया है। यदि आज मैं दोनों में से किसी एक कर्तव्य से चूका, तो जीवन भर वह बोझ मन पर रहेगा। अपने सपनों का सम्मान करने का यही दिन है।" माता-जी ने उनके माथे पर तिलक लगाया और भीगी आँखों से आशीर्वाद दिया: "जाओ बेटा, तुम्हारी मेहनत और तुम्हारी निष्ठा ही तुम्हारा भाग्य तय करेगी। याद रखना, तुम्हारी बारात दुनिया के लिए आज शुरू होगी, पर तुम्हारी कलम से आज जो लिखा जाएगा, वह तुम्हारे संघर्ष का सम्मान होगा।"

तुरंत थोड़ा-सा नाश्ता करके, दूल्हे राजा अपने परिवार के एक भाई के साथ यूनिवर्सिटी की ओर दौड़ पड़े। रास्ते में अन्य दूल्हों की तरह कोई बैंड-बाजा या फूल-मालाएँ नहीं थीं, पर दिमाग में बीती रात पढ़े गए 'गुजराती साहित्य के आलोचनात्मक सिद्धांतों' का घमासान चल रहा था।

यूनिवर्सिटी कैंपस में सन्नाटा था। अन्य परीक्षार्थी परीक्षा के तनाव में डूबे थे। उन्होंने परीक्षा कक्ष में प्रवेश किया। निरीक्षक (सुपरवाइज़र) ने उन्हें देखकर एक मुस्कान दी, क्योंकि वे जानते थे कि यह परीक्षार्थी आज दो मोर्चों पर लड़ रहा है। जब प्रश्न-पत्र हाथ में आया, तो विषय था—'गुजराती साहित्य का आलोचनात्मक विश्लेषण।' उनके लिए यह केवल एक शैक्षणिक विषय नहीं था, यह उनके बीते तीन वर्षों के जीवन-प्रबंधन का प्रतिबिंब था। प्रश्न-पत्र में चार मुख्य भाग थे। उन्होंने तय किया कि आज वे केवल किताबी ज्ञान नहीं, बल्कि अपने जीवन के अनुभवों को साहित्यिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत करेंगे। उनकी कलम से निकला हर एक शब्द उनके संघर्ष की गाथा था।

उन्होंने कलम थामी और उत्तर-पुस्तिका के पहले पृष्ठ पर अपने जीवन के संघर्ष को 'समय और कला' के दार्शनिक मूल्य के साथ जोड़ दिया:

"साहित्य में समय का चित्रण केवल घटनाओं का क्रम नहीं है, बल्कि पात्र के आंतरिक संघर्ष का 'निर्णायक क्षण' है। मेरे जीवन में यह तीन वर्षों का संघर्ष मेरे जीवन-काव्य का 'कठिन समय' रहा है। समय का काव्यात्मक मूल्य: मैंने शिक्षा के हर घंटे को एक 'आवश्यक कला' के रूप में देखा। परिवार की ज़िम्मेदारी निभाने के बाद रात में पढ़ाई करना केवल जागरण नहीं था, बल्कि समय के अंधकार में ज्ञान का दीपक जलाने की एक कलात्मक क्रिया थी। बड़ा परिवार और आर्थिक तंगी—ये सब पृष्ठभूमि के पात्र थे, जिन्होंने मेरे व्यक्तित्व को निखारा और मजबूत बनाया। जब संसाधनों की कमी होती है, तब एक कलाकार की तरह जीवन के हर क्षण का मूल्य समझना पड़ता है।

आत्म-अनुशासन का दर्शन: मेरी और मेरे परिवार की 'सीमित खर्च' की नीति महात्मा गांधी के 'अपरिग्रह' के सिद्धांत जैसी थी—आवश्यकता से अधिक का संचय न करना। शिक्षा के प्रति मेरा समर्पण बचपन से ही था। हिम्मतनगर की राजपूत बोर्डिंग में तीन वर्ष बिताकर मैंने अनुशासन और संघर्ष के साथ जीना सीखा, जो मेरे जीवन के इस संकल्प के लिए सबसे बड़ा 'त्याग' था। मनपसंद काम करके खुश होना मेरे स्वभाव में नहीं था; संघर्ष करके परिवार को खुश देखने का मेरा एक अलग ही दृष्टिकोण था। आज मेरे विवाह और परीक्षा का यह टकराव जीवन के इस काव्य की 'सर्वोच्च कसौटी' है। इस संघर्ष में मैंने समय को एक शस्त्र की तरह इस्तेमाल किया है—कोई आलस्य नहीं, कोई विराम नहीं। यही एक सच्चे सुसंस्कृत मनुष्य की पहचान है।"

उन्होंने गुणवत्ता (क्वालिटी) के प्रश्न को अपने तीन वर्षों के अध्ययन की निष्ठा से जोड़ते हुए लिखा:

"गुजराती साहित्य में 'बलिदान' का निरूपण मानव जीवन के सौंदर्यशास्त्रीय मूल्य को प्रकट करता है। मेरे जीवन-पथ पर 'उत्तरदायित्व' मेरे संकल्प का प्रतिबिंब है, जबकि 'नियंत्रण' यूनिवर्सिटी के नियमों का पालन है।

बलिदान का सौंदर्य: मेरे जीवन में उत्तरदायित्व यह था कि भले ही मुझे दिन में मेहनत-मज़दूरी करनी पड़े या रात भर जागना पड़े, पर कॉलेज में कभी पीछे नहीं रहूँगा। कक्षा में नियमित उपस्थिति, प्रोफेसरों के प्रश्नों के उत्तर देना और हर असाइनमेंट को श्रेष्ठता से पूरा करना—यह मेरा आत्म-नियंत्रण था। मुझे केवल पास नहीं होना है, मुझे ज्ञान अर्जित करना है। मेरी आर्थिक स्थिति मेरे ज्ञान की गुणवत्ता को कभी प्रभावित न करे, यह देखना ही मेरा आत्म-अंकुश था। जर्जर पुराने मकान से निकलकर यूनिवर्सिटी के इस आधुनिक कैंपस में आना हर बार मुझे याद दिलाता था कि 'मैं श्रेष्ठता का अधिकारी हूँ।'

हर काम को बारीकी से पूरा करना और निष्ठावान पुत्र का धर्म निभाना तो मेरा स्वभाव था ही, पर अब मैं एक पति बनने की राह पर था—वह क्षण बहुत करीब था।

यूनिवर्सिटी की परीक्षा और आज का यह अंतिम पेपर नियंत्रण की ही एक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के माध्यम से परिवार द्वारा किए गए सभी निवेशों का मूल्यांकन होगा। यदि मैं अच्छे ग्रेड्स के साथ उत्तीर्ण नहीं हुआ, तो पिता की मेहनत और माँ के त्याग की गुणवत्ता पर प्रश्न चिन्ह लग जाएगा। इस संघर्ष ने मुझे सिखाया कि गुणवत्ता केवल संसाधनों की उपलब्धता

पर नहीं, बल्कि संकल्प की मजबूती पर निर्भर करती है। आज इस पेपर में जो मैं लिख रहा हूँ, वह इन तीन वर्षों के संघर्ष और कभी हार न मानने के संकल्प की 'अंतिम रिपोर्ट' है।"

इस प्रश्न का उत्तर उन्होंने अपने विवाह और करियर के जोखिम को एक साथ जोड़कर दिया:

"साहित्य में 'द्वंद्व' (दुविधा) वह तत्व है जो पात्र को एक निर्णायक मोड़ पर लाकर खड़ा करता है। मेरे जीवन के सफर में सबसे बड़ा 'जोखिम' तब आया जब जीवन की दो सबसे महत्वपूर्ण घटनाएँ एक ही समय पर टकरा गईं। आज सुबह—जहाँ विवाह की शुरुआत और परीक्षा का अंत एक ही बिंदु पर आकर मिल गए।

यदि मैं परीक्षा में नहीं आता, तो मेरी डिग्री अधूरी रह जाती (सबसे बड़ा जोखिम)। यदि मैं विवाह के मंडप में समय पर न पहुँचता, तो परिवार का मान और मेरी प्रतिष्ठा दाँव पर लग जाती। इस जोखिम के प्रबंधन के लिए मैंने दोहरे स्तर का दृष्टिकोण अपनाया।

पेपर पूरा करने के लिए मैंने पूरी तैयारी की; रात के तीन बजे तक जागकर पढ़ाई की। बारात परीक्षा समाप्त होने के २ घंटे बाद निकले, ऐसी व्यवस्था की। विवाह की पूर्व संध्या पर मैं अपने मित्रों और परिवार के साथ हँसी-खुशी का समय बिता सकता था, पर उस समय का त्याग करके मैंने अपनी किताबों को समय दिया। अवसर का यह मूल्य मेरे आत्म-अनुशासन का प्रमाण है, जो दर्शाता है कि मैं क्षणिक आनंद के बजाय एक स्थिर और सुरक्षित भविष्य को प्राथमिकता देता हूँ। आज मेरी कलम जिस संघर्ष की कथा लिख रही है, वह जीवन के हर निर्णायक मोड़ पर किए गए 'अवसर-मूल्य का विश्लेषण' है।"

अंतिम प्रश्न पर उन्होंने स्वयं को एक सफल जीवन-कथाकार के रूप में स्थापित किया:

"गुजराती साहित्य में आत्मकथात्मक शैली में जीवन के 'सत्य' की अभिव्यक्ति अत्यंत महत्वपूर्ण है। जब भी मैं थक जाता था, तो मेरे पिता की शांति और माता का साहस मुझे संबल देता था। तीन वर्षों के इस संघर्ष में गरीबी, थकान और भाग्य की अनिश्चितता का सामना किया है, पर पढ़ाई कभी नहीं छोड़ी। आज विवाह के दिन भी परीक्षा देने का यह धैर्य ही मेरा सबसे बड़ा शस्त्र था।

बारात और पेपर—दोनों को एक साथ निभा पाना ही प्रबंधन की सफलता का प्रमाण है। इस पेपर का समापन केवल एक डिग्री का अंत नहीं, बल्कि एक नवयुवक के संघर्षमय जीवन के एक अध्याय का समापन है। यह डिग्री केवल कागज़ का टुकड़ा नहीं, बल्कि परिवार को दिया गया एक वचन है। यूनिवर्सिटी की इस परीक्षा को मैंने केवल पूरा नहीं किया, बल्कि इसे

सफलता और निष्ठा की उच्चतम गुणवत्ता के साथ संपन्न किया है। इस उत्तर-पुस्तिका को लिखकर मैं एक ज़िम्मेदार नागरिक, एक शिक्षित पुत्र और एक महत्वाकांक्षी दूल्हे के रूप में अपने नए जीवन के महान पथ पर आगे बढ़ने के लिए तैयार हूँ। यह कथा मेरे जीवन की सबसे बड़ी और सबसे सटीक 'केस स्टडी' है।"

समय समाप्त हुआ। उन्होंने अपने अंतिम शब्दों के साथ पेपर पूरा किया और संतोष की एक गहरी साँस ली। निरीक्षक ने उत्तर-पुस्तिका जमा की। वह उत्तर-पुस्तिका सामान्य नहीं थी; वह एक सत्यकथा थी, जिसमें जीवन के संघर्षों को सिद्धांतों के ढाँचे में सटीक रूप से पिरोया गया था। परीक्षा भवन से बाहर आते ही सब कुछ बदल गया।

परीक्षा पूरी हुई और वे हाँफते हुए बाहर निकले। उनका शरीर थका हुआ था, पर मन अडिग था। उन्होंने एक साथ दो जंग जीत ली थीं—शिक्षा की जंग, जो भविष्य का वचन थी, और समय की जंग, जो वर्तमान की मर्यादा थी।

जब वे घर पहुँचे, तो सूर्य का प्रकोप घट चुका था, पर मेहमानों का क्रोध और थकान साफ़ दिखाई दे रही थी। किसी ने शिकायत नहीं की, पर वहाँ का सन्नाटा हर शिकायत से ज़्यादा जोर से बोल रहा था। उन्होंने झटपट तैयारी की, और जब वे घोड़ी पर सवार हुए, तो लगा कि वे कोई साधारण दूल्हा नहीं, बल्कि अभी-अभी कोई महायुद्ध जीतकर लौटे योद्धा हों। उनके सिर पर बंधा साफ़ा केवल विजय का ताज नहीं था, बल्कि एक कठोर संकल्प का बोझ भी था।

यूनिवर्सिटी की गंभीरता से विवाह के उत्सव के उत्साह में इतना त्वरित बदलाव—यही उनके जीवन की सच्ची कहानी थी। जब बारात उनके घर से निकली, तो ढोल-नगाड़ों की आवाज़ में एक अनोखी धुन थी। वह धुन केवल विवाह की खुशी की नहीं, बल्कि एक संघर्ष की विजय की थी; एक ऐसी यूनिवर्सिटी परीक्षा की, जिसमें दूल्हे ने अपनी पूरी ज़िंदगी उत्तर-पुस्तिका में उकेर दी थी। यह विजय केवल एक डिग्री की नहीं थी, बल्कि कर्तव्य और सपनों को एक ही दिन साकार करने की थी।

"सामान्य परिस्थितियों में इंसान हार मान लेता है, पर इस व्यक्तित्व ने अत्यंत विषम परिस्थितियों में भी अपना धैर्य कभी नहीं खोया।"

[८] वैवाहिक जीवन: बारात से विदाई तक

दोपहर के उत्साह का समय कब का बीत चुका था, और रात्रि के प्रथम प्रहर में, थकी हुई और विलंबित बारात धीरे-धीरे कन्या के आँगन में पहुँची।

"शहनाई के सुर भी आज मानो थके हुए लगते थे,
खुशी के गीतों में भी विरह के सुर जागते थे।
दूल्हे के वेश में कोई योद्धा आया हो, ऐसा आभास था,
आज मिलन कम और संघर्ष का अहसास खास था।"

यह युद्ध जीतकर लौटे एक थके हुए योद्धा की गंभीरता थी। बाराती भी विलंब से तंग आकर शांत हो चुके थे... कन्या पक्ष के आँगन में कोई शिकायत नहीं थी, बस एक गहरा मौन था: 'हम उनके संघर्ष को समझते हैं, लेकिन हमारा हृदय प्रतीक्षा करते-करते थक गया है।'

मंडप में दीयों का प्रकाश और यज्ञ का धुआँ वातावरण को पवित्रता प्रदान कर रहे थे, लेकिन उन्हें अग्नि की ज्वाला में अपने आने वाले संघर्ष की लपटें दिखाई दे रही थीं। अब, कन्या का आगमन हुआ। उन्होंने भारी लाल साड़ी पहनी हुई थी... उन्होंने नीचे देखते हुए धीरे-धीरे मंडप में प्रवेश किया, उनके कदमों में कोई डर नहीं था, बस एक दृढ़ स्वीकारोक्ति थी कि उनका जीवन अब गरीबी के खिलाफ महायुद्ध में एक सैनिक बनने जा रहा है। जब उन दोनों ने पहली बार एक-दूसरे को देखा, तो उस दृष्टि में कोई प्रेम की भाषा नहीं थी, केवल एक गहरी समझ थी: 'हम एक-दूसरे के संघर्ष के साथी हैं, सुख के नहीं।'

और फिर, वह करुण क्षण आया—कन्यादान। कन्या के पूज्य पिता का हृदय इस क्षण के लिए टूट रहा था। उनके हाथ काँप रहे थे। उन्होंने अपनी बेटी का छोटा-सा हाथ युवक के मजबूत हाथों में सौंप दिया। यह केवल कन्या का दान नहीं था; यह तो गरीबी के खिलाफ दिए जाने वाले बलिदान की आहुति थी। पिता के आँसू गले में ही जम गए थे।

उन्होंने अपने काँपते हाथों से बेटी का हाथ युवक के हाथ में रखा और काँपती आवाज़ में केवल इतना ही कह सके: "यह हमारी सबसे बड़ी बेटी है, युवक। इसके संघर्ष में इसे कभी अकेला मत छोड़ना। इसका ध्यान रखना... इसके मन का ख्याल रखना..." उस क्षण, कन्या ने अपने पिता के चेहरे की ओर देखा। वह चेहरा १८ वर्षों के त्याग की कठोर रेखाओं से भरा

हुआ था। उसने अपने पिता का हाथ पकड़कर मौन रहकर यह वचन दिया: 'उन्होंने जो बलिदान दिया है, मैं उसे कभी व्यर्थ नहीं जाने दूँगी।'

सप्तपदी की विधि शुरू हुई। अग्नि की परिक्रमा हो रही थी। कन्या के कदम जब पीछे हटते और युवक के कदमों के साथ आगे बढ़ते, तब वे केवल फेरे नहीं थे, वह तो अपने बचपन को पीछे छोड़कर संघर्षपूर्ण भविष्य की ओर एक अनिवार्य प्रस्थान था। उन दोनों के मन में एक ही दृढ़ संकल्प था कि यह विवाह सुख पाने के लिए नहीं, बल्कि दुखों का अंत करने के लिए हुआ है।

और फिर, विदाई की करुण घड़ी आई। कन्या उठी; दो छोटी बहनें और छोटा भाई उससे लिपट गए। सबसे छोटी बहन रो भी नहीं पा रही थी, पर उसके मासूम सवाल थे: "दीदी, तुम वापस आओगी न?" यह सवाल सुनकर कन्या का हृदय चूर-चूर हो गया। बीच वाली बहन फूट-फूटकर रो रही थी, वह जानती थी कि घर का आधारस्तंभ टूट रहा है। छोटा भाई मौन था, पर उसने उसकी साड़ी का पल्लू कसकर पकड़ रखा था। कन्या ने दहलीज पर आख़िरी बार पीछे मुड़कर देखा। अपना घर, जो आज उसे महल से भी अधिक पवित्र लग रहा था, वह आज उससे छूट रहा था।

बेटी के लिए कभी अपना कोई घर नहीं होता, जन्म से ही उसके लिए एक कहावत है—"बेटी तो पराया धन है"...

यह बात किस हद तक सच है...

बेटी को जो अपनापन पिता के घर में होता है, वह कभी ससुराल में नहीं मिलता। यह एक कठोर वास्तविकता है जिसे स्वीकार करने में समाज बहुत समय लेगा।

दहलीज पर खड़ी होकर जब उसने चावल फेंके,
तब मायके के आशीर्वाद कभी कम नहीं पड़े।
वह बेटी बनकर गई, पर लक्ष्मी बनकर आई,
उसके जाने से आँसू छलके, पर दुखों ने कभी धोखा न दिया।
आँखों में लाचारी थी, दिल में संघर्ष की आग,
वही पिता का अभिमान थी, और युवक का सुहाग।
यह विदाई केवल घर की नहीं, युगों के भार की थी,
जहाँ उसके कदम पड़े, वहाँ सुखों ने सवेरा किया।

उसके पिता मौन खड़े थे। उन्होंने कन्या को आशीर्वाद दिया; उनके चेहरे पर अब कोई संयम नहीं बचा था, बस एक हारे हुए पिता की लाचारी थी। कन्या ने पीछे चावल फेंके।

"वह एक-एक दाना मायके के आशीर्वाद और पिता के बलिदान की याद दिला रहा था। फिर युवक ने उसका हाथ थामा और वे दोनों, मौन संघर्ष के साथी बनकर, एक नए और अनिश्चित भविष्य की ओर निकल पड़े।"

[९] विसनगर की गलियों में बँटा पितृत्व का आनंद

ईडर कॉलेज के शैक्षणिक परिसर में मास्टर डिग्री का उच्च शिखर सर करने के बाद, श्रीमान की विद्या-प्राप्ति की धुन और शिक्षा के प्रति निष्ठा ने उन्हें एक और महत्वपूर्ण पड़ाव की ओर अग्रसर किया। वह संक्रमण काल, एक सिद्धि का संतोष और नए संकल्प का उत्साह लेकर आया था। अब आगे का गंतव्य था 'एस. टी. टी. बी.एड. (S.T.T.B.Ed)कॉलेज, विसनगर'। यह एक व्यावसायिक शिक्षा की शुरुआत थी, जो भविष्य के निर्माण की नींव रखने वाली थी। इस पवित्र यात्रा में, नियति ने एक अत्यंत प्रिय और परिचित चेहरा साथ जोड़ दिया—गाँव के साथी मित्र, श्री कपिलकुमार उपाध्याय। उनकी उपस्थिति केवल एक सहपाठी के रूप में नहीं थी, बल्कि मानो गाँव की मिट्टी और उसकी संस्कृति को विसनगर के नए वातावरण में साथ ले आने वाला एक मजबूत आधारस्तंभ थी। दोनों मित्रों का जुड़ाव केवल कक्षा तक सीमित नहीं था, बल्कि जीवन के उच्च मूल्यों और भविष्य के सपनों को एक साथ संजोने की प्रतिज्ञा था।

विसनगर के इस विद्याधाम में कदम रखते ही, रहने की व्यवस्था का प्रश्न स्वाभाविक था; लेकिन सौभाग्य से, कॉलेज काल के आशीर्वादस्वरूप संबंधों ने तुरंत मार्ग प्रशस्त कर दिया। एम. एन. आर्ट्स कॉलेज में प्रोफेसर के पद को सुशोभित करने वाले, पूजनीय श्री मूलसिंह चौहान दादा थे, जिनका व्यक्तित्व केवल एक शिक्षाविद का नहीं, बल्कि वात्सल्य और मार्गदर्शन के बहते झरने के समान था। दादाश्री के हृदयपूर्वक प्रयासों और आशीर्वाद के कारण, दोनों मित्रों के लिए विसनगर की 'राजपूत बोर्डिंग' में फिर से आश्रय स्थल रूपी व्यवस्था हो सकी। बोर्डिंग का वह वातावरण, युवाओं के उत्साह, अनुशासन और अध्ययन के संयोजन से भरा हुआ, मानो घर से दूर एक दूसरा घर बन गया। यहाँ शिक्षा की ज्योति प्रज्वलित रहती, और मूलसिंह दादा की छत्रछाया उनकी शैक्षणिक प्रगति में एक अदृश्य शक्ति प्रदान करती थी।

शैक्षणिक गतिविधियाँ पूरे ज़ोरों पर चल रही थीं। बी.एड. के सिद्धांतों और व्यावहारिक ज्ञान में मन पूरी तरह लीन था। वर्ष था १९८९ (1989), और जीवन का एक अत्यंत महान व हृदयस्पर्शी मोड़ आने वाला था। उस समय, आदरणीय मित्र के जीवन में कॉलेज काल के दौरान ही विवाह हो चुका था, इसलिए उनका मन एक साथ दो मोर्चों पर सक्रिय था—एक तरफ करियर का निर्माण और दूसरी तरफ गृहस्थ जीवन के बंधन। तभी, एक दिन, डाकिया

पत्र लेकर आया और एक संदेश मिला। वह पत्र केवल कागज़ का टुकड़ा नहीं था, वह तो खुशियों का महासागर लेकर आया था। पत्र में लिखा था कि घर पर 'बिटिया रानी' (दीकरीबा) का जन्म हुआ है।

"प्रभु को चढ़ाए फूलों के बदले में मिली,
सदेह अवतरी बेटी, घर-मंदिर को सजा गई।"

उस क्षण का वर्णन शब्दों में करना असंभव है। बोर्डिंग के शांत वातावरण में अचानक आनंद की एक लहर दौड़ गई। अपने शैक्षणिक संघर्ष के बीच, ईश्वर द्वारा दिया गया यह सर्वोत्तम वरदान था—पिता बनने का सौभाग्य। यह खुशी केवल एक व्यक्ति तक सीमित नहीं थी। मित्रता के गहरे संबंध ने उस खुशी को सर्वव्यापी बना दिया। कपिलकुमार उपाध्याय जी, जो इस पूरे प्रसंग को हृदय से याद करते हैं, कहते हैं कि उस क्षण की मिठास और उल्लास आज भी उनके स्मरण में अंकित है।

माननीय श्री कपिलकुमार उपाध्याय जी उस खुशी को शब्दों में ढालते हुए कहते हैं, "मेरे साथी मित्र के घर बेटी के जन्म की खुशी... वह तो मानो स्वयं लक्ष्मी जी का आगमन था! उस आनंद को केवल पत्र पढ़कर स्वीकार नहीं किया जा सकता था। उसे तो मनाना ही पड़ता। हमने तुरंत तय किया कि इस पवित्र और धन्य पल का जश्न ऐसा होना चाहिए, जो विसनगर की गलियों में गूँज उठे।" तत्काल, मित्र-मंडली एकत्रित हुई। पैसों की बचत या खर्च का विचार किए बिना, यह मित्रता की पराकाष्ठा थी। पेड़े और जलेबी—ये दो ऐसी मिठाइयाँ जो हर शुभ अवसर का प्रतीक हैं—उन्हें बड़ी मात्रा में लाने का निर्णय लिया गया।

बोर्डिंग के मित्रों के साथ मिलकर, विसनगर के बाज़ारों में चहल-पहल शुरू हो गई। पेड़ों की मिठास मानो बिटिया की मासूम मुस्कान का प्रतीक थी, और गरम-गरम जलेबी की चाशनी का प्रवाह मानो जीवन में उमड़ आए आनंद के सैलाब का निशान था। मित्रों के चेहरों पर छाया उल्लास और उन गलियों में गूँजती हँसी ने उस समय विसनगर के वातावरण को पावन कर दिया। यह एक ऐसा जश्न था, जिसमें कोई औपचारिकता नहीं थी, केवल हृदय का शुद्ध प्रेम और स्नेह था। बेटी के जन्म की खुशी में, पेड़े और जलेबी बाँटना केवल मिठाई का वितरण नहीं था, बल्कि मित्रता के बंधन को और अधिक मजबूत करने वाला एक पवित्र अनुष्ठान था।

इस प्रकार, ईडर से विसनगर तक का शैक्षणिक सफर, मूलसिंह दादा के आशीर्वाद से मिला राजपूत बोर्डिंग का आश्रय, और कपिलकुमार उपाध्याय जैसे परम मित्र की निष्ठापूर्ण

उपस्थिति—इन सब के बीच १९८९ के उस अनमोल वर्ष में बिटिया के जन्म ने एक अमर स्मृति कायम कर दी।

"वह दिन मित्रता, शिक्षा और जीवन के सर्वोच्च आनंद का एक साथ मिलन था, जिसकी मीठी यादें आज भी उन गलियों में जीवंत हैं।"

[१०] पति के विरह में पत्र-लेखन

जय माताजी,

आपके चरणों में मेरा प्रणाम। यहाँ से आपको पत्र लिखने बैठी हूँ, तो शब्द ढूँढना कठिन हो रहा है। मन एक तरफ़ आनंद से छलक रहा है और दूसरी तरफ़ आपकी चिंता में डूब रहा है।

"सूर्योदय में तो सब कोई साथ देते हैं, असली मज़ा तो तब आए,
जब ढलती शाम को मैं थकूँ और तुम हाथ थामो।"

आपको याद है? जब आप यहाँ से बी.एड. (B Ed) करने के लिए निकले थे, तब हमारे घर के आँगन में सन्नाटा छा गया था। लेकिन अब... अब उस सन्नाटे में एक मधुर चहचहाहट घुल गई है।

आपको पता है, हमारी बेटी बहुत छोटी है, लेकिन उसके आगमन से यह घर और हमारा पूरा जीवन रोशन हो गया है। आप ही तो कहते थे न कि जीवन में कोई बड़ा उद्देश्य होना चाहिए? देखिए, अब वह उद्देश्य हमारे सामने सो रहा है! आपने लिखा था कि मैं चिंता न करूँ, आप पढ़ाई में ध्यान दे रहे हैं। लेकिन मैं यहाँ से महसूस कर सकती हूँ कि आपका मन कितना व्याकुल होता होगा। आपको घर की याद आती होगी, बच्ची का चेहरा देखने के लिए आप तड़पते होंगे। यह सब मैं जानती हूँ।

"समझें एक-दूसरे की भावनाएँ, जिसके बिना अधूरी मेरी कहानी,

जो थामे रखे उँगली...

जिसके बिना दुनिया लगे अधूरी...

जो बाँधते नहीं... जोड़ते हैं,

शंकाओं को पीछे छोड़ते हैं,

अपनों के लिए दौड़ते हैं और साँसों को भी दाँव पर लगाते हैं।"

हमारा रिश्ता ऐसा है जो कभी एक-दूसरे से अलग नहीं हो सकता।

परंतु, आपको एक बात गाँठ बाँधकर मन में बैठा लेनी है: आप अपनी पढ़ाई में पूरा ध्यान दीजिएगा।

हमारी यह लक्ष्मी धीरे-धीरे बड़ी होगी। उसके पहले कदम, उसकी पहली हँसी की किलकारी, उसकी पहली बात... यह सब मैं अपनी आँखों में सहेजकर रखूँगी और जब आप वापस आएँगे, तब एक सुंदर कहानी की तरह आपको सुनाऊँगी। मैं यहाँ उसकी पूरी देखभाल कर रही हूँ, उसके लिए थोड़ी भी चिंता मत कीजिएगा। आपकी इस यात्रा में मैं उसकी माँ भी हूँ और आपकी शक्ति भी।

मैं जब सुबह-सवेरे खेत में जाती हूँ, तो मुझे एक ही विचार आता है, "यदि यह पत्र पढ़ रहे मेरे पतिदेव आज पढ़ाई में पीछे रह गए, तो क्या होगा?" आपने तो पूरी ज़िंदगी खेत को देखा है, उसकी मेहनत को देखा है। भीषण धूप में जब पसीना बह जाता है और हाथों में छाले पड़ जाते हैं... तब उस मज़दूरी की थकान नहीं लगती थी, बल्कि मन का बोझ लगता था।

यदि आप ध्यान नहीं देंगे, तो आपकी पूरी ज़िंदगी खेत में मिट्टी-डेले कूटने में बीत जाएगी। आपके हाथों में किताब और कलम शोभा देती है, मिट्टी-डेले कूटने का कठोर काम नहीं। मुझे यह कल्पना भी पसंद नहीं कि मेरे पति, जो शिक्षक बनकर ज्ञान का दीपक जलाने वाले हैं, वे फिर उसी धूल और मिट्टी में अपनी मेहनत गँवाएँगे। इस विचार मात्र से मेरा हृदय काँप उठता है।

हमारी बेटी जब बड़ी होगी और कोई उससे पूछेगा कि उसके पिता क्या करते हैं, तब उसे गर्व से कहते आना चाहिए कि, "मेरे पिता एक सम्मानित शिक्षक हैं!" उसी जीवन के लिए हम अभी लड़ रहे हैं, न कि मिट्टी कूटने की मजबूरी के लिए।

याद रखिएगा, आप अब अकेले नहीं हैं। पहले हम केवल 'दो' थे, लेकिन अब हम 'तीन' हो गए हैं। यह तीसरा व्यक्ति हमारा भविष्य है। इस बेटी की नज़र आपके आने वाले सम्मान की ओर टिकी है। उसकी छोटी-सी हथेलियाँ भले ही अभी कुछ न कह पाती हों, लेकिन उसकी आँखों में मैंने एक बड़ा सपना देखा है—एक सुखी, शिक्षित और गौरवपूर्ण जीवन का सपना।

मैं खेत का काम और घर की सारी ज़िम्मेदारियाँ सँभाल लूँगी। मैंने अपनी सारी इच्छाओं को ताक पर रख दिया है। मेरा एकमात्र ध्येय यह है कि आपको यहाँ किसी चीज़ की कमी महसूस न हो।

आप वहाँ खूब मेहनत कीजिए। भूख-प्यास भूल जाइए, नींद को कुछ महीनों के लिए अलविदा कह दीजिए। यह समय आपके जीवन का सबसे निर्णायक समय है। ऐसा समय, जो तय करेगा कि आने वाली पीढ़ियाँ आपको एक खेत-मज़दूर के रूप में याद रखेंगी या फिर एक ज्ञानी शिक्षक के रूप में!

कृपया इस पत्र को पढ़कर भावुक मत होइएगा। यह पत्र केवल एक याद दिलाने के लिए लिखा है। अब ज़्यादा नहीं लिखती, क्योंकि मैं जानती हूँ कि आपके समय की हर एक सेकंड कीमती है।

बस, मेरी बात मानिएगा, पढ़ाई में पूरा ध्यान दीजिएगा।

भगवान आपको शक्ति दें।

आपकी सफलता की राह देखती,

आपकी धर्मपत्नी।

"इन क्षणों में नींद त्यागकर अपने परिवार की छत के नीचे नींद की सुगंध फैलाई है। क्या हुआ होगा उस समय में? क्या मैं खुद को इस स्थिति से बाहर ला पाऊँगी? ऐसे प्रश्न मुझे सोने नहीं देते!"

[११] मिट्टी की दीवार और मासूम किलकारी के अस्तित्व की पीड़ा

आँगन में पुत्री की मीठी किलकारी गूँज रही थी, एक नन्हीं-सी आशा का दीपक जला था, पर उस किलकारी के साथ ही गरीबी की छाया और अधिक गहरी हो गई। उस बच्ची के मासूम आगमन को 'वरदान' मानकर खुश हुआ जाए या 'बोझ' मानकर डरा जाए, इस भेद को पिता का हृदय समझ नहीं पा रहा था। बेटी के जन्म से उनका जीवन दो अटूट ध्रुवों से जुड़ गया: असीम प्रेम और अंतहीन लाचारी।

उनका घर... नहीं, उसे घर नहीं कहा जा सकता था। वह तो २०० (200) वर्ग फुट की एक ऐसी जेल थी, जहाँ आशाओं का साँस लेना भी कठिन था। इस छोटी-सी जगह के दो भाग थे—पूर्वी भाग पशुओं के लिए और पश्चिमी भाग परिवार के लिए।

"एक ही छत के नीचे पशु और इंसान का बसेरा था,
गरीबी का कैसा क्रूर यह मज़ाक हम पर गहरा था।
सीली दीवारें भी मानो हमारी लाचारी पर रोती थीं,
बेटी की मुस्कान में ही बस, जीने का सहारा था।"

इंसान और पशु के बीच की दीवार मुश्किल से एक ईंट के पर्दे की थी। वह दीवार केवल ईंट-चूने की नहीं थी, वह तो उनकी मानवीय गरिमा और आर्थिक लाचारी के बीच की सीमा रेखा थी। पिता जब रात को सोते, तो उनकी पीठ हमेशा उस नम और ठंडी दीवार को छूती रहती। वह स्पर्श केवल ठंडा नहीं था, वह तो लाचारी का अहसास था। दोनों कमरों के बीच कोई दरवाज़ा नहीं था, केवल लकड़ी की एक जाली थी, जहाँ से भैंस की आँखें रात भर उन्हें देखती रहती थीं।

पत्नी के लिए सुबह की शुरुआत हमेशा एक यातना से होती थी। दिन का उदय पशु के गोबर की नम, तीव्र और असहनीय दुर्गंध से होता था। वह सुबह ४:३० (4:30) बजे आँख खोलती, बेटी को पिता के हाथों में सौंपती और भैंस वाले हिस्से में चली जाती। मिट्टी की गीली ज़मीन से वह गोबर और गंदगी साफ़ करना एक कठिन यज्ञ जैसा था।

"सुबह की पहली महक गोबर की गंध में खो जाती,
एक पत्नी के समर्पण की कथा दहलीज पर ही रुक जाती।
हाथ में झाड़ू और हृदय में बेटी का उज्ज्वल भविष्य,
उसी मजबूरी में ही ज़िंदगी की मिठास ढूँढ़ी जाती।"

माँ का सबसे बड़ा युद्ध था: बेटी को इस गंदगी से दूर रखना। बेटी धीरे-धीरे घुटनों के बल चलना सीख रही थी। उसका मासूम मन उस नम दीवार की ओर आकर्षित होता। माँ तुरंत दौड़कर आती और बेटी के हाथों को अपने आँचल से रगड़कर साफ़ करती। यह सफ़ाई केवल हाथों की नहीं थी, वह तो अपनी लाचारी की भावना को साफ़ करने का एक निष्फल प्रयास था।

पिता का मन हमेशा उस २०० वर्ग फुट के दायरे में कैद रहता। पत्नी के मौन से उन्हें और भी अधिक पीड़ा होती। एक बार पत्नी ने केवल इतना ही कहा था: “पशु को अच्छी जगह देना ज़रूरी है। वह है, तभी तो हम हैं।” उन्होंने उसी क्षण तय कर लिया था कि इस भैंस की उन्हें भगवान की तरह पूजा करनी होगी, क्योंकि वही उनकी बेटी के भविष्य का एकमात्र आधार थी।

"चबड़क... चबड़क... जुगाली की वह आवाज़ रात भर गूँजती,
गरीबी की वह धुन कानों में काँटे की तरह चुभती।
दूध के उन पैसों में ही तो दिखता था बेटी का सपना,
इसीलिए तो एक पिता इस अपमान को खामोशी से पीता।"

जब जब बारिश का मौसम आता, तब यह २०० वर्ग फुट की जेल और भी क्रूर हो जाती। छत की कमज़ोर कड़ियों से पानी टपकना शुरू हो जाता। माता और पिता रात भर बर्तन रखकर टपकते पानी को रोकने का प्रयास करते। एक रात भारी बारिश में दीवार से प्लास्टर का एक बड़ा टुकड़ा गिर पड़ा। आवाज़ इतनी तेज़ थी कि बेटी चौंककर जाग गई। पिता को उस क्षण लगा मानो यह घर उन्हें निगल जाएगा।

रात ढलने पर माहौल और भी गंभीर हो जाता। बाहर की दुनिया का अंधेरा अंदर की दीवारों की दरारों में घुल जाता। नन्हीं बेटी जब पालने में सोती, तो बगल के कमरे में भैंस लगातार जुगाली करती रहती—'चबड़क... चबड़क...' पिता को लगता कि यह केवल आवाज़ नहीं है, यह तो गरीबी का एक अंतहीन गीत है।

"रात भर जागकर दीवार की दरारें गिनी हैं,
मैंने संघर्ष की इस जेल में ही स्वाभिमान की डोर बुनी है।
भले ही पशुओं की आवाज़ों में बीतती हैं आज की रातें,
पर मैंने बेटी की किलकारी में कल की सुबह देखी है।"

पिता ज़मीन पर बैठकर बेटी को देखते, उसके नन्हे-नन्हे पंजों की ओर देखते और मन ही मन शपथ लेते: "मैं तुम्हें इस 'चबड़क... चबड़क...' की आवाज़ से बाहर निकालूँगा। मैं तुम्हें एक साफ़-सुथरा आँगन दूँगा, जहाँ तुम्हारे कदम गंदगी पर नहीं, बल्कि फूलों पर पड़ेंगे।" सामर्थ्य कम था, रास्ता अनजान था, पर पिता का संकल्प लोहे सा दृढ़ था। यह रात, यह दीवार और यह दुर्गंध—उनके जीवन की कड़वी वास्तविकता थी, जिसे वे हर दिन पितृत्व के प्रेम से सहते थे।

क्या कसूर था उस बच्ची का, जिसे पैदा होते ही इतने दुख सहने पड़े...

कुदरत को कोई डर नहीं कि अभी वह नादान, अज्ञानी बच्ची है; उसे किस अपराध की सजा मिल रही है?

उस छोटी-सी बच्ची को देखकर उसके सपनों का गला न घुट जाए, इसके लिए न धूप देखता हूँ, न अंधेरा—एक मशीन की तरह काम करता हूँ;

अब तो खुद को रेगिस्तान के बीच अकेला पाता हूँ, जहाँ कोई रास्ता नहीं दिखता... कोई मेरी वेदना नहीं समझ सकता। बस, करो या मरो।

"इस अध्याय को पढ़ते ही पाठक उस २०० वर्ग फुट के कमरे की घुटन को गहराई से महसूस कर सकेगा।"

[१२] समर्पण, संघर्ष और सम्मान की गाथा

यह कथा केवल एक व्यक्ति के कार्यकाल की नहीं, बल्कि उस आत्मनिष्ठा की है जिसने संघर्ष के भंवर में भी अपने लक्ष्य की नौका को डूबने नहीं दिया। जिस क्षण पिताश्री ने बी.एड. (B Ed)की उपाधि धारण की, उसी क्षण से उनके मन में एक ही संकल्प दृढ़ हुआ था: ज्ञान रूपी इस दीक्षा को समाज सेवा के यज्ञ में समर्पित करना। यह संकल्प केवल आर्थिक आजीविका का मार्ग नहीं था, बल्कि अपनी प्यारी बेटी को एक उज्ज्वल भविष्य देने का एक पवित्र वचन था।

शिक्षण सेवा के प्रारंभिक सोपान में उनकी निष्ठा की सुगंध विभिन्न विद्याधामों में फैली। 'राजमणि विद्यालय-सनाली' में दो महीने का अल्प सेवाकाल हो या फिर 'राधीवाड' की संस्था में बिताए गए आठ महीने—हर जगह उनकी विशिष्ट शिक्षण-शैली और विद्यार्थियों के प्रति उनका प्रेम झलकता था। परंतु जीवन की सबसे क्रूर परीक्षा तो अभी बाकी थी।

तत्पश्चात वे एक ऐसी संस्था से जुड़े जहाँ उन्हें अपना सबसे बड़ा बलिदान देना पड़ा। इस संस्था में उन्होंने पूरे ३६ महीने यानी तीन वर्षों तक अविरत सेवा दी। घर से सैकड़ों किलोमीटर दूर, एकाकीपन का अग्निपथ उन्होंने स्वीकार किया था। रात में जब वे अकेले सोते तो छत भले ही टपकती हो, पर हृदय में जलती आशा कभी नहीं टपकती थी। उनके सामान में केवल दो जोड़ी कपड़े, कुछ पुस्तकें और परिवार का एक फोटो था, जो उन्हें हिम्मत देता था।

> "घर से दूर रहकर मैंने तन्हाई को सजाया है,
> परिवार के सुख की खातिर अपनी खुशियों को वार आया हूँ।
> भले खाली हो जेब और रातें जागकर बीतें,
> पर बच्चों के भविष्य के लिए मैंने यह बाज़ी स्वीकार की है।"

वर्ष १९९४ (1994) में उनके जीवन में एक नया सूरज उगा—दूसरी संतान, एक पुत्र का जन्म (जिसने ये किताब लिखी वो संतान) हुआ। एक पिता के लिए इससे बड़ी खुशी और क्या हो सकती थी? पर विधाता की विडंबना तो देखिए, उस सौभाग्यशाली क्षण में पिता घर पर नहीं थे। ३६ महीनों से वेतन न मिलने के कारण उनके पास अपने लाडले पुत्र का चेहरा देखने जाने के लिए बस के टिकट तक के पैसे नहीं थे। पुत्र के जन्म का समाचार पीले कागज़ पर लिखी

एक पत्र (डाक) के ज़रिए मिला। उस पत्र के शब्दों को पढ़कर आँखों में खुशी के आँसू तो आए, पर जेब की लाचारी ने पैरों में बेड़ियाँ डाल दी थीं।

"पुत्र के जन्म की चिट्ठी तो आई पर पिता लाचार था,
जेब की उस खाली जगह में गरीबी का भार था।
कागज़ को छाती से लगाकर वे रात भर रोए होंगे,
पिता के दुलार पर आज मजबूरी का वार था।"

आर्थिक तंगी के उन दिनों में पत्नी का साथ अकल्पनीय था। पत्नी घर पर भैंस के दूध की बिक्री से जो थोड़े-बहुत पैसे बचाती, वह चुपचाप पति को भेज देती ताकि उनका अस्तित्व टिका रहे। वह स्वयं आधे पेट सो जाती, पर पति के इस 'कठोर लक्ष्य' में कभी बाधा नहीं आने दी। साथी मित्रों ने भी इस आत्मनिष्ठ शिक्षक को उधार पैसे देकर मदद की, क्योंकि वे जानते थे कि यह इंसान किस अग्निपथ पर चल रहा है।

छत्तीस महीनों तक बिना वेतन के काम करना कोई सामान्य बात नहीं है। साथी मित्रों की नज़रों में प्रश्नचिह्न थे, पर पिताश्री के चेहरे पर हमेशा मुस्कान रहती थी। वे मानते थे कि वेतन न मिलना संस्था की समस्या है, लेकिन विद्यार्थियों को न पढ़ाना उनकी नैतिक विफलता मानी जाएगी।

"३६ महीनों की उस तपस्या में न थी कोई थकान,
निष्ठा के इस मार्ग पर न था कोई दाग।
बिना वेतन के भी ज्ञान का दीपक जलाए रखा,
मैंने संघर्ष की राख में ही ढूँढ़ा है अपना बाग।"

अंततः प्रतीक्षा की घड़ी समाप्त हुई। एक सुबह समाचार मिला कि बकाया सारा वेतन चुकाया जाएगा। जब वह राशि खाते में जमा हुई, तो वह केवल पैसा नहीं था, बल्कि ३६ महीनों के वनवास की विजय थी। साथी मित्रों की आँखों में भी खुशी के आँसू थे, क्योंकि यह विजय केवल एक शिक्षक की नहीं, बल्कि सत्य और धैर्य की थी।

इस पिता ने साबित कर दिया कि सच्चा संघर्ष वह नहीं जिसमें पैसा गँवाया जाए, बल्कि वह है जिसमें अपनी भावनाओं की बलि देकर भी प्रियजनों के लिए एक सुरक्षित मार्ग बनाया जाए।

"जब पुरुष से ज़्यादा स्त्री में सहनशक्ति बढ़ जाती है, तो समझना चाहिए कि पुरुष का हृदय और भी साहसी हो जाता है।

उसे मालूम होता है कि पुरुष को सँभालने के लिए एक स्त्री खड़ी है... वह कभी हारेगा नहीं, और हारी हुई बाज़ी भी जीत जाएगा।"

"यह संघर्ष-यात्रा हर पिता के लिए एक प्रेरणादायी गाथा है।"

[१३] १०० रुपये की वेदना और पितृत्व का अग्निपथ

मानव जीवन के इतिहास में कुछ चरित्र ऐसे होते हैं, जिनके जीवन का प्रत्येक क्षण संघर्ष की एक पवित्र आहुति के समान होता है। यह कथा एक ऐसे ही अडिग कर्मयोगी की है, ज्ञान की जिनकी कोई सीमा न थी और जिनकी बुद्धि सूर्य के समान तेजस्वी थी, परंतु आर्थिक मर्यादाएँ उन्हें निरंतर एक अदृश्य कारागार की भाँति घेरे रहती थीं। उन्होंने जीवन की शुरुआत से ही गरीबी के कराल चक्र का सामना किया था और मास्टर्स की डिग्रियाँ प्राप्त की थीं, जो उनके लिए गरीबी के चक्रव्यूह को तोड़ने का सर्वश्रेष्ठ शस्त्र थीं। परंतु विधाता की लीला देखिए, जब मस्तिष्क में उच्चतम शिक्षा के सिद्धांत गूँजते थे, तब पेट में भूख की आग जलती थी और हृदय में परिवार को एक सुरक्षित छत देने की चिंता का महासागर हिलोरें लेता था।

नौकरी ढूँढ़ने की प्रक्रिया उनके आत्मसम्मान की परीक्षा थी। सुबह उठकर फटे हुए किंतु प्रेस किए हुए कपड़े पहनकर, हाथ में प्रमाणपत्रों की थैली लेकर वे दरवाज़े खटखटाते, जहाँ हर दरवाज़ा मानो उनकी गरीबी का उपहास उड़ाता प्रतीत होता था। इस संघर्ष के बीच जीवन में विवाह हुआ और एक निर्दोष बेटी का आगमन हुआ, जिससे ज़िम्मेदारियाँ और बढ़ गईं। पिता के मन में गहराई में एक पीड़ा थी कि वे अपनी बेटी को सामान्य बच्चों जैसी खुशियाँ भी नहीं दे पा रहे हैं। परंतु पुत्र के जन्म के छह महीने बाद की तपस्या रंग लाई और ०८ जुलाई, १९९४ (08 जुलाई 1994) को उन्हें विजयनगर के 'गायत्री कन्या विद्यालय' में उच्चतर माध्यमिक शिक्षक के रूप में नौकरी मिल गई। इस समाचार से हृदय पर रखा पहाड़ तो हट गया, पर नौकरी वतन से बहुत दूर होने के कारण एक नई चुनौती सामने आ खड़ी हुई।

सीमित वेतन में यदि वे रोज़ विजयनगर से घर आना-जाना करते, तो बस का किराया ही घर का गुज़र-बसर तोड़ देता। इसलिए पिता और माता ने पत्थर का कलेजा करके निर्णय लिया कि पिता विजयनगर में ही रहकर पैसे बचाएँगे। वहाँ उन्हें आदरणीय विपुलभाई जानी साहब सहकर्मी के रूप में मिले और दोनों ने एक छोटे-से किराए के कमरे में रहना शुरू किया। पिता का हृदय छह महीने के पुत्र को देखने के लिए तड़पता था, पर जेब में रखे सिक्कों को गिनते समय उनके दिमाग में '१०० रुपये' का आँकड़ा किसी साए की तरह मँडराता रहता था। यह १०० रुपये मानो पुत्र और पिता के बीच की दूरी थे। वे मन में संवाद करते कि यदि मैं यह १०० रुपये खर्च करूँगा, तो पुत्र को एक दिन देख पाऊँगा, लेकिन यदि यह १०० रुपये बचाऊँगा, तो बच्चों के लिए ५ किलो चावल अधिक आ पाएँगे जो उन्हें एक महीने की भूख

से बचाएँगे। यदि एक सप्ताह और रुक जाऊँगा, तो पुत्र के लिए सर्दियों का एक कंबल लाया जा सकेगा। यह पितृ-प्रेम का एक कठोर गणित था, जिसमें वे हर बार अपनी भावनाओं को मारकर कर्तव्य को जीतने देते थे। विपुलभाई जानी साहब देखते कि यह युवक रात को नींद में भी '१०० रुपये' और 'चावल' की बातें करता है, पर सुबह कक्षा में उतने ही उत्साह के साथ ज्ञान परोसता है।

परंतु समय के चक्र में एक दिन भाग्य का क्रूर प्रहार हुआ। पत्नी का एक छोटा किंतु हृदय को चीर देने वाला पत्र मिला कि जब बेटा पालने में सो रहा था, तब ऊपर की छत से प्लास्टर की रेत का एक बड़ा ढेर सीधा उसके चेहरे पर आ गिरा। यह पढ़ते ही पिता के शरीर में मानो बिजली का झटका लगा। जिस संतान के लिए वे घर से दूर बलिदान दे रहे थे, आज उसी पर छत टूट कर गिर रही थी! अब १०० रुपये की कोई गणना नहीं रह गई थी। उन्होंने सब कुछ किनारे रखकर घर की ओर दौड़ लगा दी। जब वे घर पहुँचे, तो पत्नी गोद में बेटे को लिए जागती बैठी थी और पालने पर एक फटा हुआ कंबल लटका रखा था—वह रेत के प्रहार के सामने उस माँ की सुरक्षा-दीवार थी। पिता ने पुत्र को गोद में लिया और देखा कि पालने के नीचे रेत का ढेर लगा था और दीवार में एक बड़ी दरार थी। उस रात पिता के हृदय से वेदना की एक चीख निकल पड़ी:

"टूटती हुई छत और टूटती ज़िंदगी का भार है,
रेत गिरे पालने में, यह कैसा अंधकार है!
लगता है, रास्ता यहाँ कहीं भटक गया है,
नसीब के पते पर, बस संघर्ष का अख़बार है।
फाँसी की तरह लटकती है यह नन्हीं-सी दीवार,
एक तरफ़ पशु की साँस, दूसरी तरफ़ मानव का काल है।
बचा न सकूँ अपने बेटे को छत के टुकड़ों से मैं,
क्या यही पिता के प्यार की लाचारी का प्रकार है?"

उस अंधकार में पिता ने मौन शपथ ली कि इस संघर्ष को अब समाप्त करना है। जब विजयनगर के स्टाफ को इस १०० रुपये की वेदना और छत टूटने की बात पता चली, तब पूरे स्टाफ की आँखों में खुशी और मानवता के आँसू थे।

मुझसे पुत्र की वेदना नहीं देखी गई... उस माँ पर क्या बीती होगी, इसकी कल्पना तो इस जगत-पिता को भी नहीं होगी। संघर्ष तो मैं दूर रहकर कर रहा था, पर क्या मेरी पत्नी ने अपनी

आँखों में छिपे आँसुओं को पोंछने के लिए संघर्ष नहीं किया होगा? यह बात मुझे और अधिक मेहनत करने की ओर दौड़ाती थी।

"यह गाथा साबित करती है कि चाहे कैसा भी आर्थिक संघर्ष क्यों न हो, यदि ज्ञान के साथ पितृत्व की निष्ठा हो, तो विजय निश्चित रूप से मिलती है।"

[१४] समय की क्रूरता और शनिवार की प्रतीक्षा

बात है राधीवाड़ की, एक साधारण मध्यमवर्गीय परिवार की, जहाँ आशा और अभाव के बीच एक पतली डोर पर जीवन झूल रहा था। घर भले ही छोटा था, पर उसमें सपनों का एक बड़ा आसमान समाया हुआ था। एक बेटी और एक बेटा—वे दो मासूम आँखें, जिन्होंने जीवन के सहज पहलुओं से ज़्यादा संघर्ष के मोड़ों को देखा था। उन बच्चों के लिए पूरा सप्ताह केवल एक ही दिन का इंतज़ार करता था: शनिवार। वह शनिवार, जब उनके प्यारे पिताश्री दूर-दराज के क्षेत्र से थकान समेटकर भी उनके लिए अपनत्व की गरमाहट लेकर वापस लौटने वाले होते थे। उस रिहाइशी इलाके में दिन भर जीवन की हलचल बनी रहती थी। सुबह होते ही तरह-तरह के फेरीवाले और सामान बेचने वाले आते। कोई ताज़ी सब्ज़ियों की बोरी लेकर आता, तो कोई कपड़ों की पोटली खोलकर बैठता, तो कोई मिट्टी के बर्तनों की मीठी खनक लेकर आता। आसपास के घरों से पड़ोसी झुंड बनाकर अपनी रोज़मर्रा की ज़रूरतों का सामान ख़रीदते। माताएँ सब्ज़ियों का भाव-ताव करतीं, बच्चे खेलते-खेलते नई चीज़ों की ओर आकर्षित होते और खुशी की एक छोटी-सी लहर पूरे मोहल्ले में फैल जाती।

परंतु इस दृश्य के ठीक बीच में, दो नन्हें जीव—बेटी और बेटा—केवल देखते रह जाते। वे घर की दहलीज पर बैठकर या दरवाज़े की दरार से बाहर की दुनिया को निहारते। उनकी आँखों में कोई शिकायत नहीं थी, कोई ज़िद नहीं थी; बस एक गहरी समझदारी और धैर्य था। यदि कोई फेरीवाला आइसक्रीम बेचने आता और पड़ोस के बच्चे आइसक्रीम खाकर हँस रहे होते, तब भी वे दोनों मौन धारण किए बैठे रहते। उनकी नन्हीं मुट्ठियाँ भले ही खाली रहतीं, पर हृदय में पिता की महानता का गर्व भरा हुआ था।

"जेबें भले ही खाली थीं, पर आँखों में विश्वास था,
पिता जाएँगे शनिवार को, वही हमारा खास था।
दुनिया भले ही बेचती हो खुशियाँ बाज़ारों में,
हमारे लिए तो पिता का हाथ ही हमारा आकाश था।"

जब नन्हें हाथ खिलौनों के बजाय

पिताजी के आगमन की प्रतीक्षा करने लगें,

तब समझदारी की जड़ों में ही बचपन दम तोड़ देता है...

समय का प्रवाह धीमा नहीं पड़ा, पर समय की माँग बदल गई। अब केवल शनिवार के आगमन से काम चलने वाला नहीं था। परिवार को एक बेहतर ज़िंदगी देने के लिए पिताश्री ने एक बड़ा निर्णय लिया: रोज़ का आना-जाना (अप-डाउन)। यह निर्णय केवल भौगोलिक दूरी को कम करने के लिए नहीं था,बल्कि समय के साथ एक कठिन युद्ध था। रोज़ सुबह आठ बजे का समय केवल घड़ी की सुई नहीं, बल्कि युद्ध के मैदान में प्रस्थान करने का समय था। राधीवाड़ से शुरू होकर विजयनगर तक की शुरुआती यात्रा, और वहाँ से खेडब्रह्मा जाने के लिए वाहनों की खोज। इस यात्रा में धक्के, गर्मी, ठंड और बारिश—प्रकृति की हर मार सहनी पड़ती थी। पिताश्री के कंधों पर केवल बैग का वज़न नहीं था, बल्कि परिवार के उज्ज्वल भविष्य की ज़िम्मेदारी का अदृश्य भार था। रात को जब साढ़े सात बजे वे वापस लौटते, तो उनके चेहरे पर थकान साफ़ दिखाई देती थी, पर दरवाज़े के बाहर खड़े बच्चों के चेहरे देखकर उनकी सारी थकान पल भर में मिट जाती थी।

शनिवार, जो पहले स्वागत योग्य लगता था, वह अब और अधिक कठोर हो गया। शनिवार का अर्थ था—सुबह-सवेरे साढ़े पाँच बजे के अंधेरे में ही निकल जाना। ठंड के दिनों में धुंध के कारण रास्ता भी ठीक से दिखाई नहीं देता था, फिर भी उनके कदम अचल होकर आगे बढ़ते थे। उन्होंने कभी शिकायत नहीं की। उनकी आँखों में केवल एक ही दृश्य था: उनके बच्चों की खुशी। धीरे-धीरे, तमाम बाधाओं से टकराते और जूझते हुए उन्होंने इन सभी मुश्किलों को पार करना शुरू किया। जीवन के रास्ते से काँटे कम हो रहे थे, और परिवार अब स्थिरता के किनारे पहुँच रहा था।

परंतु, समय जब क्रूर होता है, तो वह कोई पूर्व सूचना नहीं देता। वर्ष २००१ (2001), जो स्थिरता लेकर आया था, वही वर्ष एक भयंकर परीक्षा लेकर आया। एक दिन, जब पिताश्री अपने साथी मित्र विजयभाई पटेल (लक्ष्मीपुरा) के साथ स्कूल से घर लौटने के लिए निकले थे, तब काल रूपी एक भयंकर हादसा हुआ। यह दुर्घटना केवल शरीर को चोट पहुँचाने वाली नहीं थी, बल्कि आत्मा को झकझोर देने वाली थी। सड़क पर पड़े हुए, आसपास खून और धूल में लथपथ, शरीर का हर हिस्सा दर्द से चीख रहा था। दोनों हाथ... हाँ, जिन हाथों ने इतने वर्षों तक कठोर परिश्रम किया था, संघर्ष का भार उठाया था और कलम पकड़कर ज्ञान का दीपक जलाया था, वे ही दोनों हाथ एक साथ टूट गए थे। अस्पताल में दोनों हाथों पर सफ़ेद पट्टियाँ बाँधी गईं। यह दृश्य अत्यंत करुण था। एक ऐसा व्यक्ति, जिसने कभी किसी के सामने हाथ नहीं फैलाया था, उसके हाथ अब लाचार होकर सफ़ेद पट्टियों में कैद थे।

"जिन हाथों ने पूरी ज़िंदगी सबको थामे रखा,
आज वही हाथ लाचारी की पट्टियों में बँधे थे।
समय की क्रूरता ने किया ऐसा गहरा घाव कलेजे पर,
कि खुद नसीब ने भी आज आँसू बहाए थे।"

परंतु यहीं पिताश्री के अडिग मनोबल की सच्ची परीक्षा हुई। उनका शरीर भले ही लाचार हुआ, पर उनका मन हार मानने को तैयार नहीं था। वेदना, पीड़ा और निराशा के हर क्षण को उन्होंने हिम्मत से हराया। बच्चे फिर से इंतज़ार कर रहे थे, पर यह इंतज़ार शनिवार का नहीं, बल्कि पिताश्री के स्वस्थ होने का था। उनकी धर्मपत्नी ने इस कठिन समय में एक मज़बूत आधारस्तंभ बनकर साथ दिया। धीरे-धीरे, असह्य पीड़ा सहकर भी पिताश्री ने ज़िंदगी की गाड़ी को फिर से पटरी पर ला खड़ा किया। शारीरिक क्षति और समय की क्रूरता उनके मन की दृढ़ता के आगे फीकी पड़ गई।

"उनका यह संघर्ष आने वाली पीढ़ियों के लिए दृढ़ता और आत्मविश्वास का एक प्रेरणादायी स्रोत है। उन्होंने विषमताओं से बाहर निकलकर जीवन को एक नया आयाम दिया, जो वास्तव में वंदनीय है।"

[१५] कर्मभूमि के कर्मयोगी

यह कर्मभूमि, जिसकी सुंदरता इमारतों की भव्यता में नहीं, बल्कि उन हज़ारों नन्हें मस्तिष्कों में थी जहाँ ज्ञान के दीपक प्रज्वलित होते थे। यहाँ कोई अधिकारी या सेठ नहीं था; यहाँ तो केवल विद्या का एक पुजारी था, जिसका संपूर्ण अस्तित्व केवल ध्वनि में और ध्वनि का अस्तित्व केवल वाणी में रचा-बसा था। सुबह होते ही जब वे अपनी पाठशाला के प्रांगण में कदम रखते, तब ऐसा लगता मानो किसी मंदिर के गर्भगृह में प्रवेश कर रहे हों। वहाँ की धूल भी उनके चरण-स्पर्श से पवित्र हो जाती हो, ऐसी अनुभूति होती थी।

उनका पढ़ाना केवल पुस्तकों के पाठ का वाचन भर नहीं था, वह तो ज्ञान को परोसने की एक अनोखी कला थी। जब गुजराती के 'आख्यानों' की बारी आती, तब उनके कंठ से निकलने वाले शब्दों में ऐसा सुर घुलता कि सुनने वाला स्तब्ध रह जाता। उनकी आवाज़ में मीरा का भाव, नरसिंह मेहता की भक्ति और प्रेमानंद की कथा-कला एक साथ गूँजती थी। विद्यार्थी कभी ऊबते नहीं थे, क्योंकि यह विद्यापुरुष केवल पढ़ाते नहीं थे, वे तो जीवन जीने की कला सिखाते थे।

> "सरल था उनका स्वर, पर सुर उसका ताज़गी से भरा था,
> वाणी उनकी शिक्षक थी, पर शब्द शिल्पकारी से जड़ा था।
> ज्ञान न था किताबों में, ज्ञान था उनकी नसों में,
> कर्म था निभाना, बाकी कहाँ समय था गद्दारियों में।"

इस ओजस्वी वाणी के पीछे सोने जैसा शुद्ध हृदय छिपा हुआ था। जब कोई विद्यार्थी फीस न भर पाता या किसी के पास पुस्तकें खरीदने के पैसे न होते, तब यह कर्मयोगी शांति से अपने वेतन में से उन बच्चों की मदद कर देता था। वे मानते थे कि शिक्षा पर हर बच्चे का जन्मसिद्ध अधिकार है। कई बार वे अपने लिए पुराने कपड़े या सादा भोजन चुनते, पर विद्यार्थी के हाथ में कभी पुरानी किताब या खाली पेंसिल नहीं होनी चाहिए, ऐसा उनका आग्रह रहता था। वे हमेशा कहते, "ज्ञान का दान ही सच्चा धन है।" उनकी इस निस्वार्थ सेवा के कारण वह विद्यालय केवल ज्ञान का ही नहीं, बल्कि मानवता का मंदिर बन गया था।

परंतु समय की गति अटूट है। विजयनगर का वह विद्यालय, जहाँ उन्होंने स्वर्णिम वर्ष बिताए थे, वहाँ प्रशासनिक परिवर्तन हुए। 'फाजल' (अधिशेष/सरप्लस) घोषित होना—यह शब्द उस

शिक्षक के लिए कितना पीड़ादायक होता है, जिसका पूरा जीवन उसी प्रांगण में ढल गया हो! एक-एक करके परिचित चेहरे विदा लेते गए और अंततः इस कर्मयोगी के सिर पर भी परिवर्तन का भार आ पड़ा। उनके लिए वह केवल नौकरी बदलने का निर्णय नहीं था, बल्कि आत्मा के शरीर छोड़ने जैसा आघात था। विदाई के दिन विद्यार्थियों की आँखों में आँसू थे, पर आदरणीय शिक्षकश्री ने वचन दिया, "शब्दों का सुर कभी शांत नहीं होगा; मैं भले ही स्थान बदलूँ, पर कर्म का धर्म वही रहेगा।"

"ज्ञान देने वाले गुरु को वंदन है, उनके चरणों की धूल भी चंदन है।

ज़रूरतें समय-समय पर बदलती हैं, पर एक शख्स को देखा है मैंने जिसने कभी अपने शिष्यों को आगे जाने के अलावा और कोई ज़रूरतें समय के परिवर्तन में भी बदली नहीं।"

नए अध्याय की शुरुआत ०८ जुलाई, २००५ (08 जुलाई 2005) को हुई। विजयनगर की धड़कनें पीछे छूट गई थीं और उन्होंने 'शेठ सी. जे. हाईस्कूल, वडाली' के प्रांगण में कदम रखा। इस बार वे उच्चतर माध्यमिक विभाग में जुड़े थे। विद्यार्थी बड़े थे और अपेक्षाओं का आसमान भी विशाल था। उनका प्रवेश एक आदरणीय विद्वान के रूप में हुआ, जिनके अनुभव का सागर अगाध था। वडाली की भूमि पर भी उन्होंने अपनी वाणी को उसी ऊर्जा के साथ प्रस्तुत किया। साहित्य की गहराई और दर्शनशास्त्र के पाठ अब नए विद्यार्थियों के मन को गढ़ने लगे।

वडाली में भी गुप्त दान की वह परंपरा अविरत रही। किसी को वेशभूषा (यूनिफॉर्म), किसी को फॉर्म की फीस या किसी को ट्यूशन की आवश्यकता होती, यह कर्मयोगी हमेशा एक शीतल छाया बनकर खड़ा रहता। वे विद्यार्थियों से कहते, "जीवन में सबसे बड़ा अध्ययन यह है कि आप अपने हृदय की आवाज़ सुन सकें।" विजयनगर में जो धूल पवित्र होती थी, वही पवित्रता अब वडाली की सीढ़ियों पर महसूस होती थी।

"स्थान बदला पर श्रद्धा का दीप अखंड रहा,
शब्दों का वह शाश्वत सुर पवित्र और प्रचंड रहा।
कर्मभूमि भले ही नई हो पर धर्म तो वही है,
मानवता की यह महिमा जग में सबसे श्रेष्ठ है।"

"उनका जीवन इस बात का प्रमाण है कि सच्चा शिक्षक कभी 'फाजल' (व्यर्थ) नहीं होता; वह तो केवल स्थान बदलता है, पर उसका धर्मकार्य हमेशा अविरत चलता रहता है।"

[१६] संघर्ष के शिल्पी

जीवन की इस यात्रा में कुछ व्यक्तित्व ऐसे होते हैं, जो अपने संघर्ष को केवल जीते नहीं हैं बल्कि उसे एक मिसाल बना देते हैं। यह गाथा एक ऐसे ही संघर्षशील व्यक्तित्व और उनके सहयोगी परिवार की है, जिन्होंने सीमित साधनों में भी कर्तव्यनिष्ठा का एक विशाल साम्राज्य रचा है। विजयनगर से वडाली तक की यह यात्रा केवल स्थान परिवर्तन नहीं थी, बल्कि जीवन के एक महान अध्याय का समापन और दूसरे भव्य अध्याय का शुभियात (शुभआरंभ) थी।

इस संघर्ष के दिनों का सबसे पवित्र स्थान वह १०×२० (10×20) फुट का छोटा-सा कमरा था। भौतिक दृष्टि से स्थान भले ही संकरा हो, परंतु उसमें रहने वालों के हृदय की विशालता इतनी थी कि उस कमरे में पूरी दुनिया समा जाती थी। वह कमरा ज्ञान, प्रेरणा और शांति का केंद्र बना हुआ था, जहाँ इस शिल्पी के जीवन के आधारस्तंभ समान मित्र—श्री दौलतसिंह, श्री नटवरसिंह, श्री किशनसिंह, श्री राजेंद्रसिंह और श्री विजयसिंह—रोज़ रात को एकत्र होते थे। उनका रोज़ रात को बैठना केवल समय बिताना नहीं था, बल्कि कल के संघर्ष के लिए ऊर्जा का आदान-प्रदान करना था।

बारिश के मौसम में जब घर की छत से पानी टपकने की 'टपक सिंचाई' शुरू होती, तब ये दरियादिल मित्र एक साथ मिलकर बर्तन सजाने का काम हँसते मुख से करते थे। यह दृश्य कठिनाई में एकता बनाए रखने और जीवन जीने की कला का प्रतीक था।

> "दीवारें भले ही संकरी थीं, पर दिल में आसमान था,
> दोस्तों का साथ था, इसीलिए जीने में खास विश्वास था।
> छत टपकती थी भले ही, पर आँख में कहीं नमी न थी,
> संघर्ष के उन दिनों में ही तो ज़िंदगी की सच्ची मिठास थी।"

समय हमेशा एक जैसा नहीं रहता। ८ जुलाई, २००५ (08 जुलाई 2005) केवल एक तारीख़ नहीं, बल्कि कर्म की पुकार और एक नए युग का उदय थी। विजयनगर का अध्याय समाप्त हुआ और पिताश्री को अपनी नई कर्मभूमि के रूप में हमारे गांव से करीब 12 से 13 किलोमीटर दूर ही वडाली की हाईस्कूल 'शेठ सी. जे. हाईस्कूल' में कार्यभार सँभालने का गौरवपूर्ण अवसर मिला। विजयनगर की भूमि ने मित्रों का साथ और संघर्ष की शक्ति दी, पर

अब समय नई ज़िम्मेदारियों को उठाने का था। विजयनगर से वडाली का यह प्रस्थान सहज नहीं था; एक तरफ़ परिचित स्मृतियों को छोड़ने की वेदना थी, तो दूसरी तरफ़ नई ज़मीन पर नई शुरुआत करने का उत्साह था।

वडाली का जीवन यानी सादगी, निष्छलता और आत्मीयता। शेठ सी. जे. हाईस्कूल में उन्होंने स्वयं को शिक्षण कार्य के प्रति पूरी तरह से समर्पित कर दिया। उनका कार्य केवल पढ़ाने तक सीमित नहीं था, बल्कि विद्यार्थियों में मूल्यों का सिंचन करना था। विद्यालय ने उन्हें कर्मभूमि के रूप में स्वीकार किया और उन्होंने विद्यालय को तपोभूमि बना दिया। वडाली का यह अध्याय शांति और स्थिरता का अध्याय बना, जहाँ उन्हें संघर्ष के दिनों में जिस उद्देश्य की तलाश थी, वह प्राप्त हुआ।

इस सफलता में परिवार की भूमिका को कभी भुलाया नहीं जा सकता। पिताश्री के अदृश्य और मज़बूत सहारे के समान परिवार ने कभी कोई शिकायत नहीं की, बल्कि हमेशा प्रोत्साहन दिया। भले ही छोटे-से कमरे में रहना पड़ा हो या नई जगह ढलना पड़ा हो, परिवार ने एकता और प्रेम की भावना बनाए रखी। सच्ची विरासत भौतिक संपत्ति नहीं, बल्कि उच्च चरित्र और संस्कार हैं, जिसे इस परिवार ने साबित कर दिखाया।

इस महान व्यक्तित्व की गाथा असाधारण मनोबल, निस्वार्थ मित्रता और अटल पारिवारिक प्रेम का उत्सव है।

> "१०×२० के कमरे से शुरू हुई यह विराट यात्रा,
> संघर्ष के उस पथ पर कभी न झुकी उनकी नज़र।
> वडाली की पवित्र धरती पर खिला कर्तव्य का वह गुलाब,
> पिताश्री का जीवन है आज हज़ारों प्रश्नों का जवाब।"

"१०×२० के कमरे से मिली सीख, आज वडाली की कर्मभूमि में एक विशाल वटवृक्ष बनकर अनेक लोगों के जीवन को छाँव दे रही है।"

[१७] पुत्री की विदाई: संघर्ष की साक्षी और फूट-फूटकर बहते आँसू

पुत्री की विदाई केवल एक रस्म नहीं है, बल्कि एक पूरे संघर्षपूर्ण जीवन की मीठी परिणति है। जीवन के अंधकार के वे दिन, जब हमारा चार सदस्यों का परिवार केवल १०×२० (10×20) फुट के छोटे-से कमरे में साँस लेता था, वह कमरा केवल ईंटों की दीवारें नहीं था; वह तो पिताश्री के कठोर संघर्ष का जीवंत साक्षी था। उस घर की छत गर्मियों में आग का गोला बन जाती और बारिश के मौसम में टपकती थी, पर उसके कोने-कोने में मेहनत की महक थी। पिताश्री, आपको याद है? जब बेटी गर्मी में सो नहीं पाती थी, तब आप ज़मीन पर पानी छिड़ककर हाथ से पंखा जलते थे। वह केवल हवा नहीं थी, बल्कि पिता के पसीने का शीतल स्पर्श था।

वर्ष २००६ (2006) में जीवन का नया अध्याय शुरू हुआ। आठवीं कक्षा का वह पहला दिन, जब आप मेरा हाथ पकड़कर 'शेठ सी. जे. हाईस्कूल' में ले गए थे। उस दिन से हमारी रोज़ की बस की यात्रा शुरू हुई। सुबह की उस भीड़ भरी बस में आप हमेशा मेरे लिए सीट ढूँढ देते और अपने कंधे पर मेरा सिर टिकाने की अनुमति देते। आपके माथे पर पसीने की बूँदों में मेरे भविष्य के सपने घुलते थे। आप कहते थे, "बेटा, पढ़ाई ही हमारा सच्चा धन है, जिसे कोई चुरा नहीं सकेगा।"

मेरी प्यारी बहन, जिसने उस छोटे से घर में बचपन के हर अभाव को देखा था, वह केवल बेटी नहीं थी; वह आपके संघर्ष की सहचरी (मंत्री) थी। उसने कभी किसी खिलौने की ज़िद नहीं की, क्योंकि वह पिता की मजबूरी को दिल से समझ गई थी। आपने उसे संघर्ष की आग में तपाकर पारसमणि बना दिया था।

"कमरा छोटा था पर सपने विशाल थे,
अभावों के बीच भी संस्कारों के ठाट थे।
बेटी ने देखा था पिता का वह तपता पसीना,
इसीलिए उसके मन में कभी कोई मलाल न थे।"

वर्ष बीतते गए और आपकी मेहनत रंग लाई। १०×२० के उस किले से बाहर निकलकर हमने नए, विशाल घर में गृह-प्रवेश किया। वह आँगन आपके तप का फल था। और फिर आया वह दिन, जिसकी खुशी और ग़म दोनों एक साथ थे—बेटी की शादी। शादी की धूमधाम में पूरा घर झूम रहा था, पर आपकी छाती में एक सिसकी छिपी हुई थी। आप हँस रहे थे, पर आँखों में एक महासागर हिलोरे ले रहा था। चार सदस्यों के परिवार से अब तीन हो जाने की वह अवांछित वास्तविकता सामने आकर खड़ी थी।

कन्यादान की उस पवित्र विधि में जब आपने बेटी का हाथ सौंपा, तब मानो आपके जीवन का एक पूरा युग समाप्त हो रहा था। विदाई की घड़ी आई तब आसमान भी ग़मगीन था। जिस पिता ने जीवन के बड़े-बड़े तूफ़ानों के सामने अपना मनोबल डिगने नहीं दिया था, वह बाप आज फूट-फूटकर रो पड़ा। वे आँसू कमज़ोरी के नहीं थे, वे तो बीते वर्षों के संघर्ष का हिसाब थे।

"बेटी यानी घर का दिया, जो दूसरे घर को रोशन करे,
और बाप यानी वटवृक्ष, जो मौन रहकर अपनी ही डाली कटने दे।
खुशी तो है कि तेरा अपना आँगन है आज,
पर आँसू रुकते नहीं कि घर में नहीं है तेरी आवाज़।
लक्ष्मी के कदम जहाँ पड़े, वहाँ कभी न हो कोई कमी,
बस एक गुज़ारिश: इस बाप को भूलना मत कभी।"

आपने उसे सीने से लगाकर काँपती आवाज़ में कहा, "बेटा, जा खुश रहना। मैंने तुझे संघर्ष करना सिखाया है, अब अपने नए घर को संस्कारों से सजाना।" जब उसकी गाड़ी रास्ते के मोड़ पर ओझल हो गई, तब पूरा आँगन और आपका हृदय खाली हो गया। चार की दुनिया अब तीन हो गई। वह शून्यता हमेशा रहेगी, पर उसमें आपकी पुत्री के भविष्य की रोशनी हमेशा जगमगाती रहेगी।

आपकी जीवनसंगिनी (माताजी) और मैं, अब हम तीनों उन मीठी यादों को संजोकर जियेंगे। बेटी के जाने के बाद घर शांत हो गया है, पर दीवारों पर लटकती उसकी तस्वीरें आज भी पिता होने के गौरव का अहसास कराती हैं।

"पिताश्री, आपने केवल बेटी को विदा नहीं किया है, आपने अपने आजीवन संघर्ष को एक शुभ परिणाम दिया है। आपका संघर्ष अमर रहे।"

[१८] ऋणबंध की कथा

'जहाँ मंडप फिर से सजा'

'घर'... यह शब्द केवल एक पता भर नहीं है, यह तो एक जीवंत ग्रंथ है, जिसकी हर दीवार पर बीते समय की स्याही से सुख-दुख की गाथा लिखी होती है। मेरे लिए यह घर एक मंदिर के समान था, जहाँ अभी दो वर्ष पूर्व ही बेटी की विदाई की यमुना उमड़ी थी। उस विदाई का सूनापन अभी भरा भी न था कि नियति ने एक अप्रत्याशित ज़िम्मेदारी सौंप दी। अभी मुश्किल से दो वर्ष बीते होंगे कि अचानक उसी आँगन में फिर से बाँस की बल्लियों की खटखट शुरू हो गई। इस बार मंडप मेरी भानजी (ભાણીબા) के लिए सजने वाला था। यह निर्णय केवल एक विवाह का नहीं था, बल्कि एक पवित्र ऋण चुकाने का माध्यम था।

बात वर्ष २०१३ (2013) की है। इस कथा के केंद्रबिंदु मेरे बहनोई साहब हैं, जिन्हें मैं 'वडील' (ज्येष्ठ/आदरणीय) कहकर संबोधित करूँगा। वे इंजीनियरिंग के स्वर्ण पदक विजेता (गोल्ड मेडलिस्ट) थे और अहमदाबाद की निरमा कंपनी में प्रबंधक (मैनेजर) के उच्च पद पर आसीन थे। उनका करियर सूर्य की भाँति देदीप्यमान था। परंतु २४ अप्रैल का वह दिन कालमुखा साबित हुआ। कार्यालय में काम के दौरान हृदयाघात (हार्ट अटैक) आया और उस तेजस्वी करियर का करुण अंत हो गया। यह समाचार एक परिवार के सपनों पर ग्रहण की भाँति था। उनकी बेटी (मेरी भांजी) के सिर से पिता का साया छीन गया।

वडील जब तक जीवित थे, हमारे परिवार के लिए हमेशा एक ढाल बनकर खड़े रहते थे। अब जब वे नहीं रहे, तो उनकी दुलारी बेटी के भविष्य को सँभालना हमारा परम कर्तव्य था। मैंने और मेरे परिवार ने एक मौन संकल्प लिया: "मंडप मेरे ही आँगन में सजेगा। मेरी भानजी केवल भानजी नहीं,वह मेरी बेटी है।"

"खून के रिश्तों से भी ऊँचा एक नाता होता है,
जहाँ स्नेह और समर्पण का ही ताना-बाना होता है।
पिता नहीं हैं तो क्या? यह मामा अभी बैठा है,
ऋण चुकाने की खातिर ही यह मंडप फिर से सजा है।"

मंडप फिर से सजा। इस बार बाँस के वही खंभे थे, पर उनका अर्थ बदल गया था। दो वर्ष पूर्व वे विदाई की वेदना के प्रतीक थे, आज वे पितृ-प्रेम के गौरव के प्रतीक बने थे। मंगल-फेरों के समय ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वडील स्वयं स्वर्ग से उतरकर आशीर्वाद दे रहे हों। अपनी सगी बेटी के विवाह में जो उत्साह था, उससे भी अधिक प्रेम से मैंने भानजी की हर ज़िम्मेदारी निभाई।

अंततः विदाई की वह घड़ी आ गई। दो वर्ष पूर्व अपनी बेटी की विदाई के समय आँखों के आँसुओं में वेदना थी, पर आज भानजी की विदाई के समय आँसुओं में एक आत्म-संतोष था। जब भानजी मुझसे गले मिली, तो मैंने धीरे से उसके कान में कहा, "बेटा, आज तुझे विदा करके मुझे लग रहा है कि मैंने तेरे पापा का ऋण चुका दिया।"

हृदय रोता है, फिर भी आँखें सजल नहीं होतीं,

इन भावनाओं के प्रमाण इतने सरल नहीं होते दोस्त...

जहाँ ऋण चुकाना बहुत कठिन होता है, फिर भी आज तक कोई यह ऋण पूरी तरह नहीं चुका पाया।

"सगी बेटी और भानजी में कभी न रखा भेद,
आज विदाई के समय हृदय में नहीं कोई खेद।
ऋण था जो वडील का, वह आज मैंने पूरा किया,
पितृत्व का वह कर्ज़ मैंने ब्याज के साथ चुका दिया।"

गाड़ी चल पड़ी और आँगन फिर से शांत हो गया। इस बार जो सूनापन आया, वह पूर्णता का था। यह मंडप फिर से सजा और उसने यह सिद्ध कर दिया कि खून के रिश्तों से भी अधिक मानवता का ऋणबंध मज़बूत होता है। इस अवसर ने केवल पितृत्व को गौरव ही नहीं प्रदान किया, बल्कि वडील की आत्मा को भी वह शांति दी कि उनकी बेटी को पिता की कमी महसूस हुए बिना ही विदाई मिली है।

"यह ऋण-मुक्ति की कहानी मेरे जीवन का सबसे बड़ा संस्मरण बनकर रहेगी।"

‘कुछ रिश्ते रक्त से नहीं, ऋणबंध से जुड़ते हैं;

जिनसे मिलना होता है, उनसे जीवन बार-बार मिलते हैं।’

[१९] गुरु वंदना

एक ऐसे विरल व्यक्तित्व की बात है, जिनका अस्तित्व कभी केवल एक नाम या औपचारिक पद की परिभाषा तक सीमित नहीं रहा। वे तो एक जीवंत संस्था थे, संवेदनाओं का अविरत प्रवाह थे, और मानवता तथा जीवन के उत्कृष्ट मूल्यों का जीवंत उदाहरण थे। जिस शैक्षणिक परिसर को सब 'शेठ सी. जे. हाईस्कूल' के नाम से सम्मान देते हैं, उसके विशाल प्रांगण में उनकी उपस्थिति एक शीतल, शांत और गहरी छाया के समान थी, जहाँ केवल ज्ञान की ही नहीं, बल्कि करुणा और प्रेम की भी अखंड धारा बहती थी।

शुरुआती दिनों में, उनका व्यक्तित्व भले ही थोड़ा संकोची और गंभीर लगा हो, परंतु शिक्षा और संवेदना के मार्ग पर चलते हुए, धीरे-धीरे, संवेदना की अदृश्य किंतु मज़बूत डोरियों से वे बाल-मानस के साथ गहराई से जुड़ते चले गए। यह जुड़ाव इतना बढ़ गया कि देखते ही देखते, बिना किसी औपचारिक घोषणा के ही, उन्होंने 'बच्चों के प्रिय शिक्षक' का सर्वोच्च पद प्राप्त कर लिया। उनकी वाणी में ममता थी, उनकी आँखों में पुत्रवत स्नेह था, और उनके व्यवहार में निस्वार्थ समर्पण का भाव था। वे भावनाओं का एक ऐसा सेतु बन गए थे, जिसने शिक्षक और विद्यार्थी के बीच की दूरी को मिटाकर एक पितृवत संबंध की स्थापना की, जहाँ आदर और विश्वास का अखंड दीपक प्रज्वलित था।

उनका स्वभाव, स्वच्छ जल की भाँति, सरल और पारदर्शी था। जीवन के लंबे प्रवाह में उन्होंने कभी किसी के साथ विवाद के भंवर में पड़ना पसंद नहीं किया। उनका पूरा जीवन शांति, संतोष और दूसरों की निस्वार्थ मदद करने की भावना से सदैव परिपूर्ण था। किसी भी व्यक्ति की तकलीफ में वे सहायता के लिए हमेशा तत्पर रहते, मानो वह कार्य उनके अपने जीवन का ही एक हिस्सा हो। उनकी इसी विनम्रता, सादगी और निरंतर सहायक प्रवृत्ति ने उन्हें सहकर्मियों, विद्यार्थियों और संपूर्ण समाज में अत्यंत आदरणीय स्थान दिलाया था।

इतनी सादगी और संयम के पीछे एक अत्यंत निश्छल और मज़बूत 'बिंदास' व्यक्तित्व छिपा हुआ था। उनकी सच्चाई और सत्यनिष्ठा इतनी अडिग थी कि जिसे जो कहना होता, उसे सीधे और स्पष्ट मुँह पर ही कह देने का साहस उनमें था। वे मानते थे: 'बुरा लगना हो तो लगे, पर मन में कोई कलुष (मैल) नहीं रखना चाहिए।' इसी सिद्धांत ने उन्हें एक अद्वितीय और

पारदर्शी इंसान बनाया था। वे हमेशा सत्य और न्याय के पक्ष में ही खड़े रहते थे, और उनकी बात में वज़न होता था, क्योंकि सब जानते थे कि यह व्यक्ति हमेशा सच्चाई ही बोलेगा।

शैक्षणिक कार्यक्षेत्र में, वे समाज को सही राह दिखाने वाला विषय जेसे समाजशास्त्र और भू से निकलता शब्द जैसे भूगोल जैसे जीवनोपयोगी विषयों का अध्यापन कराते थे। उनकी धारदार प्रस्तुति इतनी प्रभावशाली होती थी कि विद्यार्थी कक्षा में मंत्रमुग्ध हो जाते थे। वे केवल ज्ञान नहीं देते थे, बल्कि विद्यार्थियों को सोचने पर विवश करते थे। इस व्यक्तित्व की ऊष्मा विद्यालय के बड़े बच्चों, विशेषकर ११वीं और १२वीं कक्षा के युवाओं के साथ उनके संबंधों में स्पष्ट रूप से दिखाई देती थी। ये विद्यार्थी उन्हें केवल शिक्षक नहीं, बल्कि मित्र और मार्गदर्शक मानते थे। उनके प्रति मिले निस्वार्थ प्रेम और आदर की अभिव्यक्ति के रूप में उनका जन्मदिन विद्यालय में बड़ी धूमधाम से मनाया जाता था, जिसे देखकर उनकी आँखों में हर्ष के आँसू आ जाते थे।

शिक्षा के प्रति उनकी निष्ठा कक्षा की चार दीवारों से परे थी। उन्होंने विद्यार्थियों को परिश्रम के लिए प्रोत्साहित करने का एक अनूठा और निस्वार्थ मार्ग अपनाया था। बोर्ड परीक्षा में जिन विद्यार्थियों को दोनों विषयों में ६० से अधिक अंक मिलते, उन्हें वे अपने व्यक्तिगत खर्च से ₹५०० से लेकर ₹२००० तक का नकद पुरस्कार देते थे। वे कहते थे, "यह आँकड़ा (खर्च का) चाहे कितना भी हो, इसकी चिंता मत करो, क्योंकि विद्यार्थी हैं तो हम हैं।"

वे अपने पैसे अपने लिए नहीं, बल्कि अपने विद्यार्थियों के उज्ज्वल भविष्य पर खर्च करते थे।

बच्चों की मुस्कान में ही शिक्षक की सच्ची सफलता छिपी होती है।

पुस्तक यानी समय के सागर में खड़ा किया गया एक प्रकाशस्तंभ (लाइटहाउस),

मित्रता के बिना कोई शिक्षक कभी सच्चा गढ़न नहीं दे सकता... वह केवल किताबी रटना ही करा सकेगा। कक्षा में हँसते हुए बच्चे ही सच्चे शिक्षकों की पहचान हैं।

इसी निस्वार्थ भावना और समर्पण के कारण उन्हें विद्यार्थियों की ओर से प्रेम से 'राणा' की उपाधि प्राप्त हुई थी, जो किसी संस्था ने नहीं, बल्कि हज़ारों विद्यार्थियों के हृदय ने दी हुई सर्वोच्च उपाधि थी।

इतना संयमित और गंभीर जीवन जीने वाले व्यक्ति के जीवन का एक प्रसंग ऐसा है, जो हृदय को झकझोर देता है। वह व्यक्ति, जिसने पूरी ज़िंदगी गंभीरता और सादगी का प्रतीक बनकर जी, जो हमेशा संयम में रहता था; उसे पहली बार अपने प्यारे बेटे के वरघोड़े (विवाह की

बारात) में नाचते हुए देखा गया। वह क्षण मानो समय के थम जाने जैसा था। वर्षों से सँभाला हुआ संयम, दबा हुआ आनंद, पिता बनने की खुशी, और जीवन की सबसे बड़ी संतुष्टि—यह सब एक साथ उनके कदमों और चेहरे पर छलकता हुआ दिखाई दे रहा था। उन्होंने निडर होकर, बिंदास नृत्य किया; कोई शर्म नहीं, कोई संकोच नहीं। उनके चेहरे पर वह निष्पाप मुस्कान, वह हर्ष का उल्लास... वह देखने वाले हर व्यक्ति की आँखों को नम कर देने वाला भाव था। मानो उन्होंने वर्षों तक सबको खुश रखने के बाद, अपने लिए जीने का एक पल इस दुनिया से चुरा लिया हो।

"वह क्षण यह दर्शाता था कि इस सरल व्यक्ति के हृदय में कितना उल्लास और प्रेम भरा हुआ था, जो केवल उनके अपने परिवार के सबसे बड़े उत्सव में ही प्रकट हुआ।"

[२०] एक पुत्र और विद्यार्थी

जब मैं अपनी इस संपूर्ण यात्रा का वर्णन करने बैठता हूँ, तो यह तय करना कठिन हो जाता है कि शब्दों को कहाँ से शुरू करूँ और कहाँ समाप्त करूँ। यह यात्रा केवल विद्यालय के अध्ययनकाल की नहीं है, बल्कि एक अनोखे संबंध और पवित्र बंधन की अनुभूति की है। मैं 'शेठ सी. जे. हाईस्कूल' का एक गौरवान्वित छात्र था। कक्षा ८ से १२ तक के जीवन के सबसे महत्त्वपूर्ण वर्ष इसी विद्याधाम के प्रांगण में बीते हैं। यह समयविधि मेरे लिए दोहरी भूमिका की थी: एक पुत्र के रूप में स्नेहपूर्ण बंधन और एक शिष्य के रूप में आदरणीय निष्ठा।

जब अन्य विद्यार्थियों के लिए शिक्षक और विद्यार्थी का संबंध केवल ज्ञान के आदान-प्रदान तक सीमित होता है, तब मेरे लिए उस संबंध में पिता के वात्सल्य का आशीर्वाद भी मिला हुआ था। विशेष रूप से जब गुजराती विषय का व्याख्यान शुरू होता और आदरणीय गुरुजी के रूप में मेरे पूज्य पिताजी कक्षा में प्रवेश करते, तब वातावरण में एक अनोखी गरिमा छा जाती थी।

ग्यारहवीं कक्षा का वह क्लासरूम आज भी आँखों के सामने तैर उठता है। अन्य मित्रों की भांति मैं भी एकदम शांत भाव से बैठा रहता था। मेरा वह मौन केवल एक विद्यार्थी के रूप में अनुशासन नहीं था, बल्कि उस आदर-भाव का प्रतीक था जो पिता की उपस्थिति में सहज ही उत्पन्न होता है। मैं उनके प्रत्येक शब्द को ध्यान से सुनता था—केवल परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए नहीं, बल्कि उस ज्ञान को आत्मसात करने के लिए जो मेरे पिता के मुखारविंद से प्रवाहित होता था।

> "घर पर जो पिता थे, वही विद्यालय में गुरु हुए,
> संस्कार और ज्ञान के दो संगम एक साथ शुरू हुए।
> कक्षा में मर्यादा थी, तो घर पर लाड़ का सागर,
> मेरे ही भाग्य में था पिता रूपी ऐसा गुरुवर।"

उनकी वाणी में ज्ञान की गंभीरता के साथ एक पिता की गर्माहट भी थी। वे प्रत्येक विद्यार्थी को समान दृष्टि से देखते थे और मेरे लिए भी उनका व्यवहार उतना ही निष्पक्ष रहता था। मुझे कभी अन्य विद्यार्थियों के समक्ष विशेष छूट नहीं मिलती थी, जो उनके व्यक्तित्व की निष्पक्षता और महानता को दर्शाता था। घर पर जिनके साथ मैं बेटे के रूप में हँसी-मज़ाक

करता था, उन्हीं के सामने कक्षा में मर्यादा में बैठकर पढ़ना, यह अनुभव वास्तव में अद्भुत था।

इस यात्रा ने मुझे केवल साहित्य का ज्ञान ही नहीं दिया, बल्कि जीवन की मूल्यवान समझ भी दी है। मैंने अपने पिताजी को एक उत्कृष्ट शिक्षक और एक आदर्श पिता—दोनों रूपों में देखा है। शेठ सी. जे. हाईस्कूल का वह परिसर और उन कक्षाओं की घड़ियाँ मेरे जीवन की अमूल्य धरोहर हैं।

उन्हें दो घड़ी सुनना, वह भी एक सामान्य विद्यार्थी की तरह, यह बात किसी के गले उतरने जैसी नहीं थी। जब मैं उन्हें कक्षा में देखता था, तब मुझे लगता था कि मैं कितना भाग्यशाली हूँ कि मुझे मेरे ही पिताजी से ज्ञान प्राप्त हो रहा है, वह भी एक साधारण विद्यार्थी की तरह। जैसे-जैसे मैं उनकी कक्षाएं लेता था, वैसे-वैसे मेरे मन में उनके प्रति सम्मान और अधिक बढ़ता जाता था कि 'आप यह सब कैसे कर लेते हैं, पापा...'

"शब्द उनके कानों में गूंजें, जैसे वीणा की झंकार,
पुत्र बनकर पाया है मैंने, इस जीवन का सार।
धन्य भाग्य है मेरा जो मिला ऐसा पावन योग,
पिता के चरणों में अर्पित करूँ, यह गौरवमयी संयोग।"

पूज्य पिताजी, आपका आशीर्वाद सदैव मेरे साथ रहे। आपके प्रति आदर की भावना और आपका स्नेह मेरे जीवन की नींव है। इस प्रस्तुति को आपके चरणों में शब्द-पुष्पों के साथ समर्पित करता हूँ।

"यह प्रस्तुति केवल अतीत की याद नहीं है, बल्कि मेरे जीवन में जाग्रत हुई गौरव की भावना की अभिव्यक्ति है।"

[२१] दादा और पौत्र का अनमोल संबंध तथा कोरोना काल में आनंद की एकमात्र किरण

माननीय परिवारजन, आज मैं आपके समक्ष एक ऐसी प्रेमगाथा प्रस्तुत कर रहा हूँ, जिसने कोरोना की भयावहता के बीच भी जीवन में नया उमंग और शाश्वत आनंद भर दिया। यह कथा है पूज्य दादाजी और उनके प्यारे पोते, क्रितार्थराजसिंह, के बीच के दिव्य बंधन की।

समय का चक्र धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था। विश्व भर में जब कोरोना महामारी ने अपना सबसे भयानक और क्रूर रूप धारण किया हुआ था, चारों ओर भय, अनिश्चितता और संकट का माहौल था, तब हमारे घर में एक अलौकिक घटना घटी। उस कठिन काल में मेरे प्यारे पुत्र का जन्म हुआ और मुझे यह परम सौभाग्य प्राप्त हुआ कि वे (मेरे पूज्य पिताजी) दादा बने।

> "दादा का अंतिम मित्र यानी पोता, और पोते का पहला मित्र यानी दादा।">

आधुनिक समय में संबंधों में गर्माहट और प्रेम देना—ऐसी दीर्घदृष्टि और परंपरा से समृद्ध भारतीय संस्कृति हमें सिखाती है। यहाँ उस मर्म को समझाती हुई कहावत "मूल से ज़्यादा ब्याज प्यारा होता है" दोनों पक्षों में पूर्णतः चरितार्थ होती है। भाग्यशाली वही है जिसे हर क्षण हँसने और छिपने का अवसर दादा-दादी की गोद में मिले।

उस क्षण दादाजी के मुख पर जो असीम खुशी और संतोष की भावना छलकी थी, वह अवर्णनीय थी। उनकी खुशी इसलिए भी विशेष थी, क्योंकि उन्हें मेरे जन्म के समय की परिस्थितियों का स्पष्ट अंदाज़ा था—संघर्ष, सीमित साधन और जीवन की कठोरता। परंतु, क्रितार्थराजसिंह का जन्म एक पूर्णतः भिन्न वातावरण में, प्रेम और समृद्धि के आशीर्वाद के साथ हुआ था। यह केवल एक बालक का जन्म नहीं था, बल्कि परिवार के लिए उज्ज्वल भविष्य की आशा की एक किरण थी।

जब अस्पतालों में जगह नहीं थी और हर कोई मास्क व सैनिटाइज़र के बीच जीवन जी रहा था, तब इस छोटे से बालक के आगमन से घर में एक अदृश्य सुरक्षा और गर्माहट का अनुभव हुआ। क्रितार्थराजसिंहजी ने मानो कोरोना के अंधकार को चुनौती देकर ही परिवार में प्रवेश किया था। दादाजी के लिए यह उनके जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धियों में से एक थी। उनकी

आँखों में पुत्र के जन्म की खुशी तो थी ही, पर पोते के जन्म की खुशी उससे भी कई गुना अधिक थी, मानो जीवन का सार मिल गया हो।

जैसे-जैसे क्रितार्थराजसिंह बड़े होते गए, वैसे-वैसे दादाजी के साथ उनका संबंध और अधिक गहरा होता गया। दादाजी हमेशा इस बात का ध्यान रखते थे कि नन्हें क्रितार्थराजसिंह को किसी भी वस्तु की कमी न रहे। वे उस बालक की छोटी-छोटी ज़िद को भी सहर्ष पूरा करते थे।

उनके प्रेम की पराकाष्ठा तो तब देखने को मिलती, जब कभी हम माता-पिता के रूप में क्रितार्थराजसिंह को किसी बात पर डाँटते या फटकारते। दादाजी तुरंत बीच में आते और हमें आदरपूर्वक रोकते। "उसे हाथ भी मत लगाना," ऐसे स्पष्ट शब्दों में उनका पोते के प्रति अटूट स्नेह व्यक्त होता था। यह केवल प्रेम नहीं था, बल्कि एक प्रकार का कवच था; ऐसा कवच जो बचपन की निश्छलता और मस्ती को सँजोकर रखे। दादाजी के लिए क्रितार्थराजसिंह एक राजा के समान थे, जिन्हें किसी भी प्रकार की कठोरता का अनुभव नहीं होना चाहिए था।

एक पुत्र के रूप में, हमें हमेशा यह अपेक्षा थी कि हमारे पिताश्री को उनके सक्रिय करियर से सेवानिवृत्ति मिलने के बाद, शांति, विश्राम और निर्मल प्रेम का संग मिले। हमें दृढ़ता से यह लगता था कि सेवानिवृत्ति के बाद क्रितार्थराजसिंह की ओर से उन्हें वह शांति, दादा का वह पवित्र प्रेम और वह वात्सल्य निश्चित रूप से प्राप्त होगा।

क्रितार्थराजसिंह का आगमन केवल एक पोते के रूप में नहीं, बल्कि दादाजी के सेवानिवृत्त जीवन के सबसे बड़े साथी, मित्र और मनोरंजन के स्रोत के रूप में हुआ था। दादाजी की सुबह उनके साथ शुरू होती, और उनका दिन क्रितार्थराजसिंह की बाल-लीलाओं में ही पूरा होता था। इस बालक की मुस्कान में, उसका हाथ पकड़ने की ज़िद में और उसकी निष्पाप बातों में दादाजी को जीवन का सर्वोच्च सुख मिला। इस पोते ने उनके जीवन में एक नई ऊर्जा, नया उद्देश्य और एक नई दिशा दी। निःसंदेह, क्रितार्थराजसिंह का जीवन में आगमन कोरोना काल का सबसे बड़ा उपहार है। दादाजी और क्रितार्थराजसिंह का यह अनमोल प्रेम-संबंध वास्तव में अद्भुत है।

"अनुभव की पुस्तक का सबसे सुंदर पृष्ठ यानी दादा।"

जहाँ झुर्रियाँ भले ही अधिक हों, पर उनकी सुंदरता उस झुर्री के पीछे छिपी होती है, जिसे केवल पोता या पोती ही देख सकते हैं।

"हज़ारों कमाने लगे, फिर भी वह आनंद चला गया,
जो तब मिलता था जब कहते थे—'दादा, एक रुपया दो न!'"

"यह संबंध केवल खून का नहीं, बल्कि भावनाओं, आशीर्वादों और परस्पर गौरव का है।"

[२२] शिक्षक का जीवंत व्यक्तित्व

यह कथा है एक ऐसे शिक्षक के जीवन-संघर्ष की, जिन्होंने ज्ञान के दीपक को प्रज्वलित रखने के लिए न केवल अपने जीवन के वर्ष, बल्कि अपनी आत्मा का अटूट प्रेम उंडेल दिया था। गिरधरभाई साहब ने जब इस व्यक्तित्व के प्रसंग को सुनाया, तब उसमें संघर्ष की पीड़ा से कहीं अधिक, उस संघर्ष से उपजी अद्भुत समर्पण की महक थी। शिक्षा का यह कार्य उनके लिए केवल एक नौकरी नहीं थी, बल्कि एक तपस्या थी, जहाँ प्रतिदिन नई चुनौतियों का सामना करना पड़ता था और फिर भी चेहरे पर वही ज़िंदादिली बनाए रखनी होती थी।

विशेष रूप से जब गुजराती विषय की उत्तर पुस्तिकाओं की जाँच के लिए जाना होता, तब उनका लगाव एक अलग ही स्तर पर पहुँच जाता था। यह प्रक्रिया उनके लिए विद्यार्थियों के भविष्य की नींव को मज़बूत करने का एक अंतिम अवसर होती थी। वे प्रत्येक उत्तर पुस्तिका को उसी गंभीरता से जाँचते, मानो अपनी ही किसी रचना का निरीक्षण कर रहे हों। इसमें संघर्ष था—समय से, थकान से और कभी-कभी व्यवस्था की उदासीनता से। परंतु इस शिक्षक का प्रेम इतना प्रबल था कि उनके मूल्यांकन में कभी कोई जल्दबाज़ी नहीं होती थी। गुजराती भाषा के शब्दों, भावों और विचारों के साथ न्याय करने का यह अथक प्रयास ही उनकी निष्ठा का प्रमाण था, जिसके लिए वे मूल्यांकन केंद्रों में भी विशेष रूप से जाने जाते थे।

शिक्षा जगत में समय का चक्र निरंतर घूमता रहता है, और हर वर्ष सेवानिवृत्ति (Retirement) का एक भावुक क्रम आता रहता था। उत्तर पुस्तिका जाँच केंद्र पर हर साल सेवानिवृत्त होने वाले शिक्षकों का सम्मान किया जाता और उन्हें विदाई दी जाती थी। ये अवसर भले ही भावुकता से भरे होते, लेकिन साथ ही वहाँ हल्के-फुल्के क्षण भी बनते थे। उनके साथी मित्र मज़ाक में कहते, "अगला साल आपका अंतिम वर्ष होगा, अब तैयार रहिए।" एक-एक करके प्रिय साथी सेवानिवृत्त हो रहे थे, और यह देखना भी एक प्रकार का संघर्ष था—अपने अंत (कार्यकाल की समाप्ति) की ओर बढ़ते समय को स्वीकार करने का संघर्ष। परंतु गिरधरभाई साहब के अनुसार, इस शिक्षक का व्यक्तित्व इतना जीवंत था कि वे इस क्रम का भी उत्साहपूर्वक स्वागत करते थे। यह सकारात्मकता, यह ज़िंदादिली, संघर्ष की भट्टी में तपकर ही बाहर आई थी।

उनके कार्यकाल का एक प्रसंग संघर्ष से उपजी सफलता की पराकाष्ठा को दर्शाता है। प्रांतिज में वे उत्तरपुस्तिकाओं की जाँच कर रहे थे और पहली बेंच पर बैठे थे। अचानक सचिव शाह साहब (तत्कालीन उच्च अधिकारी) निरीक्षण के लिए वहाँ आए। सचिव साहब ने सीधे इस शिक्षक के हाथ से एक उत्तरपुस्तिका ले ली। यह एक शिक्षक के लिए परीक्षा, कसौटी और चिंता का क्षण था। परंतु इस शिक्षक ने अपनी सहजता और आत्मविश्वास को बनाए रखा। सचिव साहब ने जब जाँच करने की पद्धति, मूल्यांकन की स्पष्टता और दी गई टिप्पणियों को देखा, तो वे तुरंत संतुष्ट हो गए।

इसके बाद शाह साहब ने उनसे बातचीत शुरू की। इस शिक्षक ने जो धारदार प्रस्तुति दी—शिक्षा के उद्देश्यों के बारे में, विद्यार्थियों के प्रति उत्तरदायित्व के बारे में और गुजराती भाषा के भविष्य के बारे में—उसे सुनकर सचिव शाह साहब अत्यंत प्रसन्न हुए। विषय पर उनका गहरा अधिकार, स्पष्ट दृष्टिकोण और बातचीत में आदरसूचक शब्दों का प्रयोग इतना प्रभावशाली था कि एक उच्च अधिकारी भी उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना न रह सके। यह प्रसंग सिद्ध करता है कि निष्ठा और समर्पण कभी व्यर्थ नहीं जाते, संघर्ष हमेशा मान और सम्मान के रूप में फल देता है।

ऐसे महान व्यक्तित्व को उनके साथी मित्रों ने जो सम्मान दिया, वह वास्तव में अनमोल था। उनके एक साथी मित्र ने मुझे फोन करके कहा था, "आपके पापा का स्वभाव कितना अद्भुत है! विद्यार्थियों के प्रति, लोगों के प्रति उनका प्रेम और आदर भाव अतुलनीय है। उनकी सेवानिवृत्ति की विदाई बेहद भव्य होगी, मैं आपको आज ही यह कह रहा हूँ।" ये शब्द आज भी मुझे याद हैं, क्योंकि वे केवल प्रशंसा नहीं थे, बल्कि उस शिक्षक द्वारा जीवन भर किए गए संघर्ष और समर्पण का प्रमाणपत्र थे।

"पिता नन्हे से पक्षी का विशाल आसमान हैं,
पिता वह अव्यक्त अनंत प्रेम हैं।
यदि पिता हों तो बच्चों को प्रतीक्षा रहती है उनकी गोद में सोने की,
पिता से ही परिवार में हर्षोल्लास है।
पिता से ही माता की बिंदी और संरक्षण में गर्व का अनुभव होता है।
मेरा सपना था कि मैं अपने पिताजी को अपनी गोद में सुलाऊँगा,
और वह दिन जीवन का सर्वश्रेष्ठ प्रमाण होता कि मैं उन्हें उनके बचपन में ले गया..."

उनका व्यक्तित्व सभी को जोड़कर रखने वाला, महान और प्रेरणादायक था।

"इस शिक्षक का जीवन यह सिद्ध करता है कि सच्चा संघर्ष वह नहीं जो आपको तोड़ दे, बल्कि वह है जो आपको अधिक प्रखर, अधिक जीवंत और अधिक आदरणीय बना दे।"

[२३] संघर्ष से विश्राम तक की अमूल्य यात्रा

वर्ष २०२३ (2023) का ग्रीष्मकालीन अवकाश (गर्मी की छुट्टियाँ) केवल एक शैक्षणिक सत्र का समापन नहीं था, बल्कि हमारे पूज्य वडील (ज्येष्ठ) के जीवन के एक युग का पूर्णविराम था—एक ऐसा युग जो संघर्ष, अनवरत परिश्रम और निस्वार्थ कर्तव्यनिष्ठा से परिपूर्ण था। हम सब जानते थे कि अब तो यह अंतिम सत्र है, इसके बाद तो निश्चिंत होकर विश्राम का समय आ गया था। परंतु यह 'विश्राम' उनके लिए निष्क्रियता नहीं, बल्कि संतोष की सर्वोच्च स्थिति थी। उन्होंने अपने जीवन की प्रत्येक सांस में श्रम को ही ईश्वर माना था, और अब उसी श्रम का फल पाने का समय आ गया था, जिसकी विरासत आने वाली पीढ़ियों के लिए अमूल्य मार्गदर्शन बनी रहेगी। उनका व्यक्तित्व केवल परिवार तक सीमित नहीं था, बल्कि एक वटवृक्ष के समान था, जिसने अनगिनत लोगों को शीतल छाया प्रदान की थी। बचपन से लेकर इस अंतिम सत्र तक के उनके प्रत्येक क्षण में, उन्होंने प्रेम, सादगी और कर्तव्यनिष्ठा का जो सिंचन किया है, उसका प्रभाव आज भी सभी के हृदय में अमिट है। उनका संपूर्ण जीवनकाल एक ऐसा पाठ था, जिसने यह सिद्ध कर दिया कि सच्ची संपत्ति वह नहीं जो तिजोरी में जमा हो, बल्कि वह है जो संस्कारों, सत्कर्मों और संबंधों में बाँटी गई हो।

हमारे संबंध की गहराई किसी एक पैमाने में नहीं बाँधी जा सकती थी; वह तो पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य और प्रगाढ़ मित्र की तीन पवित्र धाराओं का त्रिवेणी संगम थी। कई बार दादा, उनका पोता और मैं—हम तीनों बस स्टैंड के एक ही बेंच पर बैठे होते थे। वह बेंच हमारे लिए यात्रा की प्रतीक्षा का स्थान नहीं, बल्कि जीवन के पाठों का एक गुरुकुल था। उस बेंच पर बैठकर वे गाँव के लोगों के सरल जीवन, उनकी चिंताओं और उनके संतोष का अवलोकन करते और मुझे व्यावहारिक ज्ञान समझाते। वे कहते, "बेटा, यदि दुनिया को समझना है तो वातानुकूलित (AC) काँच के बाहर आना पड़ेगा।" यह संबंध पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य और एक सच्चे मित्र की भाँति बन गया था, जो अटूट विश्वास के धागे से बँधा था और जिसकी मज़बूती समय की हर कसौटी पर खरी उतरी थी।

कई बार हम दोनों रात को देर तक बैठकर बातें करते थे। जब पूरा गाँव शांत हो जाता और आकाश में तारे टिमटिमाते, तब उनकी बातें शुरू होती थीं। उन बातों में दुनियादारी की मीठी समझ, धर्म का गहन दर्शन, नैतिकता के सिद्धांत और उनके संघर्ष के दिनों की सत्यकथाएँ होती थीं। इन चर्चाओं के दौरान वे हमेशा सरल उदाहरणों से जीवन की जटिल समस्याओं

का समाधान समझाते थे। संघर्ष के दिनों की उनकी कहानियों को सुनकर यह विश्वास हो जाता था कि धैर्य और सकारात्मक दृष्टिकोण ही सफलता का सच्चा मार्ग हैं, और उन्हीं बातों में जीवन का सच्चा दर्शन छिपा हुआ था। उन बातचीत की पवित्रता इतनी गहरी थी कि कई बातें ऐसी थीं जिन्हें केवल हम दोनों ही जानते थे, जो हमारे अटूट प्रेम को मूर्त रूप देती थीं।

उनका प्रेम केवल बातों में ही नहीं, बल्कि चिंता में भी व्यक्त होता था। कई बार वे मुझसे पूछ लेते, "जीवन में कोई तकलीफ तो नहीं है न?" यह केवल एक प्रश्न नहीं था; इस सवाल के पीछे पितृत्व का वह गहरा वात्सल्य छिपा था, जो केवल मेरी आर्थिक स्थिति ही नहीं, बल्कि मेरे मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य के प्रति भी चिंतित रहता था। एक बार जब मैं किसी बात से परेशान था, तब उन्होंने मेरे कंधे पर हाथ रखकर कहा था, "तकलीफ जीवन का एक हिस्सा है, पर उसका बोझ दिल पर नहीं रखना चाहिए। मुझे बता दे, तेरा मन हल्का हो जाएगा।" वे मेरे लिए एक 'सुरक्षित स्थान' (सेफ स्पेस) थे, जहाँ मैं अपनी हर बात निर्भय होकर कह सकता था। उनका हर शब्द मेरे लिए गुरुमंत्र के समान था, और उनकी हर सलाह जीवन की मार्गदर्शक शिला समान थी, जिसने मुझे कभी लक्ष्य से भटकने नहीं दिया।

आधुनिक वैभव के प्रति उनकी निस्पृहता वास्तव में प्रेरणादायी थी, जिसने हमें सच्चे वैभव की परिभाषा समझाई। घर पर बाइक, स्कूटी, कार जैसे सभी आधुनिक साधन उन्होंने उपलब्ध कराए थे, फिर भी वे हमेशा यात्रा मेरे साथ ही करते थे। एक बार परिवार के सदस्यों ने उनसे आग्रह किया कि वे कार में यात्रा करें, क्योंकि बस में भीड़ और गर्मी होती है। तब उन्होंने हँसकर जवाब दिया था, "कार में बैठने से मैं समाज से दूर हो जाता हूँ। मुझे बस की भीड़ में इंसानों की महक आती है, उनके अनुभव सुनने को मिलते हैं।" यह उनका जीवन-दर्शन था: वे मानते थे कि यांत्रिक गति से अधिक महत्त्वपूर्ण संबंधों की गति है। उन्हें तो बस, ऑटो-रिक्शा और सामान्य सार्वजनिक साधनों में ही यात्रा करना पसंद था, जो आम जनजीवन से जुड़ने का एक माध्यम था। अपने पूरे जीवनकाल में वे इन्हीं सामान्य साधनों से ही यात्रा करते रहे—यह बात उनकी निरंतर गतिशीलता, सक्रियता और सादगी का जीवंत प्रमाण है। वे हमेशा प्रवाह में रहते थे और स्थिरता को आलस्य का प्रतीक मानते थे। उन्होंने यह सिद्ध किया कि सच्ची प्रगति वह है जो आपको ज़मीन से जोड़े रखे।

उनका जीवन दो पवित्र व्यवसायों का अद्भुत तालमेल था: एक शिक्षक के रूप में ज्ञान का सिंचन और एक श्रमयोगी के रूप में शारीरिक मेहनत का गौरव। रोज़ सुबह स्कूल जाने से पहले, हमारा एक अनिवार्य और संघर्षपूर्ण नियम था। हम दोनों खेत में भैंसों के लिए चारा (घास) लेने जाते थे। उस सुबह का दृश्य आज भी आँखों के सामने तैर उठता है: पक्षियों का

कलरव, गीली मिट्टी की सोंधी महक और सुबह की ठंडी हवा में हमारा बहता पसीना। हम दोनों साथ मिलकर घास काटते, कंधों पर बोझ उठाते और पसीना बहाते। युवा होने के बावजूद मैं कई बार थक जाता था, पर वे हमेशा ऊर्जा से भरे रहते थे। यह केवल पशुपालन का कार्य नहीं था, बल्कि श्रम की पवित्रता और अपनी जड़ों के प्रति अटूट निष्ठा का प्रतीक था। हम दोनों को साथ देखकर कई लोग कहते, "दो-दो तनख्वाहें आती हैं, दो-दो शिक्षक हो, तुम्हें इस सब की क्या ज़रूरत है?" इस टोंक पर उनका जवाब हमेशा धारदार होता: "भाई, तनख्वाह ज्ञान की मिलती है, पर यह श्रम संस्कारों का है! पैसा तो आज है, कल नहीं, पर मेहनत की आदत जीवन भर साथ रहती है। शारीरिक श्रम से बुद्धि और अधिक तीव्र होती है।" खेत की कीचड़ से गुज़रकर, पसीना बहाकर, फिर वे विद्यालय के पवित्र कार्य में जुटते—यह थी उनकी जीवनशैली की सच्ची विरलता, जिसने सिद्ध किया कि शिक्षा और श्रम एक-दूसरे के पूरक हैं।

उनके जीवन के संघर्ष के दिनों की सबसे बड़ी गवाह उनकी मवेशी (पशु) थीं। जब वे घर आते, तो उनकी पहली नज़र हमेशा तबेले (गौशाला) की ओर ही जाती, उसके बाद ही वे घर की ओर देखते। इस आदत के पीछे एक गहरा कारण था: वे जानते थे कि जब जीवन संघर्षों से भरा था और आर्थिक साधनों का अभाव था, तब इसी भैंस की पीढ़ी ने परिवार का पालन-पोषण किया था। यह पशुधन केवल संपत्ति नहीं था, बल्कि कठिन समय का आधारस्तंभ था, जिसके प्रति उनका आदर अटूट था। एक बार जब भैंस बीमार पड़ी, तो उन्होंने दिन-रात जागकर उसकी सेवा की, मानो वह परिवार का ही कोई सदस्य हो। सफलता के शिखर पर पहुँचने के बाद भी, अपनी जड़ों और संघर्ष के साथियों के प्रति उनका आभार कभी कम नहीं हुआ। वे कई बार मुझसे मज़ाक में कहते, "जब मैं नहीं रहूँगा, तो तुम लोग भैंस नहीं रख पाओगे।" इस मज़ाक के पीछे केवल चिंता नहीं, बल्कि एक गहरे सत्य का संकेत था कि पशुपालन एक जीवनशैली है, जिसके लिए उनके जैसे निस्वार्थ समर्पण की आवश्यकता होती है, और यदि वह समर्पण खो गया, तो व्यक्ति अपनी सफलता के मूल आधार को भूल जाएगा।

उनका जीवन-दर्शन ऐसा था कि संघर्ष करके जो धन कमाया, वह तिजोरी में बंद करने के लिए नहीं, बल्कि ज़रूरतमंदों में बाँटने के लिए है। चाहे समाज में बेटों का सामूहिक विवाह हो या कोई अन्य अवसर, जो भी उनके पास आता, वे उसे कभी निराश नहीं करते थे। वे खुले दिल से दान करते थे। एक बार गाँव के एक निर्धन विद्यार्थी को उच्च शिक्षा के लिए फ़ीस की आवश्यकता थी, तब उन्होंने किसी को बताए बिना अपने पास से एक बड़ी धनराशि दे दी।

जब किसी ने उनसे पूछा कि आप इतना दान क्यों करते हैं, तो उन्होंने शांति से कहा, "मेरी भैंसों ने मुझे संघर्ष में संभाला, और मेरी तनख्वाह ईश्वर ने मुझे दूसरों की मदद करने के लिए दी है। जो धन सत्कर्म में लगे, वही सच्चा धन है।" उनकी यह उदारता गुप्त होती थी, बिना किसी प्रसिद्धि की लालसा के, और इसीलिए वह और भी पवित्र थी। उन्होंने अपने संघर्ष के दिनों से सीखी मानवता की क़ीमत को जीवन भर सँजोकर रखा। उनका जीवन इतना अद्भुत था कि ऐसा उदात्त, निश्छल और कर्तव्यनिष्ठ व्यक्तित्व मिलना दुर्लभ था। उनका प्रभाव ऐसा था कि उनके एक शब्द से लोगों में आत्मविश्वास जाग उठता था, और उनके मार्गदर्शन से अनगिनत जीवन सफल हुए। उनका जीवन यह सिद्ध करता है कि मानवता और उदारता ही सबसे बड़ी उपलब्धि है।

पूज्य वडील का जीवन एक ऐसी गाथा है जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रेरणा देती रहेगी। उनके सिद्धांतों, उनके अटूट प्रेम और उनके अद्भुत व्यक्तित्व का प्रभाव कभी कम नहीं होगा। उन्होंने हमें सिखाया कि सादगी चरित्र की शक्ति है, और संबंध पैसों से नहीं, बल्कि समय और हृदय से बनते हैं। वे हमारी स्मृतियों में और इस संसार में हमेशा एक ध्रुवतारे की भांति चमकते रहेंगे, जो संघर्ष से गुज़रकर संतोष के शिखर तक पहुँचे थे।

"उनके ये मूल्य, उनका दर्शन और उनकी उदारता की विरासत हमें हमेशा श्रेष्ठ मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती रहेगी। हम उनके चरणों में शत-शत नमन करते हैं।"

[२४] अंतिम सत्र और अंतिम विदाई की मर्मस्पर्शी गाथा

समय की गति अविरत होती है, और २०२४ (2024) का वर्ष अब अपने अंतिम पड़ाव पर था। ढलते वर्ष का सूर्य मानो एक नई सुबह के संकेत दे रहा था, और उन संकेतों में हमारे प्रिय 'साहेब', जिन्हें सब आदर से राणा साहेब के सम्मानजनक नाम से जानते थे, उनके जीवन की एक नई ऋतु का प्रारंभ होने वाला था। हम सब, विशेषकर उनका परिवार और विद्यालय का संपूर्ण परिसर, एक गहन वेदना और भावुकता का अनुभव कर रहा था। यह विद्यालय केवल ईंटों और सीमेंट से बनी इमारत नहीं थी, बल्कि राणा साहेब के लिए एक पवित्र तीर्थस्थल था, जहाँ वे ज्ञान के सिंहासन पर विराजमान थे। वे कोई राजा नहीं थे, परंतु अपने ज्ञान के प्रकाश से वे हज़ारों हृदयों पर राज करते थे।

वे गुजराती, समाजशास्त्र और भूगोल जैसे विषयों को केवल पढ़ाते नहीं थे, बल्कि उनमें प्राण फूँक देते थे। उनकी कक्षा में मानचित्र (मैप) जीवंत हो उठते थे, और गुजराती साहित्य के गूढ़ पाठों से वे जीवन का सच्चा मर्म समझाते थे। उनकी एक अद्भुत परंपरा थी: बोर्ड परीक्षा में ६० (60) से अधिक अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थी को वे स्वयं के खर्च से पुरस्कार देकर श्रेष्ठता का सिंचन करते थे। यह पुरस्कार केवल एक वस्तु नहीं थी; वह राणा साहेब का आशीर्वाद और एक गरिमामयी शिक्षक का स्नेह था, जो विद्यार्थी के मन में जीवन भर अपने लक्ष्य पर डटे रहने का संकल्प बोता था।

अंतिम पड़ाव और गुप्त योजना

वर्ष २०२४ की शुरुआत हुई, और हम सब दिन गिन रहे थे। "केवल पाँच ही महीने शेष हैं," यह वाक्य शिक्षकों की बैठकों में बार-बार गूँजता था। साहेब की सेवानिवृत्ति (रिटायरमेंट) निकट थी। जिस व्यक्ति ने अपने जीवन के चार दशक माँ सरस्वती के इस पावन धाम को समर्पित कर दिए थे, जिन्होंने असंख्य विद्यार्थियों के जीवन को ज्ञान के आलोक से भर दिया था, अब वे अपनी कर्मभूमि से विदा लेने वाले थे। यह विचार ही एक मीठी वेदना देने वाला था।

विद्यालय में यह भावना अत्यंत प्रबल थी। यह सत्र उनका अंतिम सत्र था। १६ (16) मार्च, उनका जन्मदिन, उनकी कर्मभूमि पर उनका अंतिम जन्मदिन होने वाला था।



फरवरी की ठंड में, ११वीं और १२वीं कक्षा के विद्यार्थियों के हृदयों में एक अनूठी गर्माहट तैर रही थी। ११वीं कक्षा की टोली—उर्वशी (कक्षा की कवयित्री), रोशनी (उत्साही नेता), अक्षरा, कामिनी, भावना, धर्मी, जयसिंह, सत्यपाल, ईशा और रिया—इन्होंने एक गुप्त योजना बनाई थी। १६ मार्च का आयोजन ऐसा करना था, जो साहेब की सेवानिवृत्ति को भी सम्मान के साथ आलोकित कर दे। १२वीं कक्षा के विद्यार्थी, जिनकी बोर्ड परीक्षा अत्यंत निकट थी, वे भी इस आयोजन में सम्मिलित थे। उनके लिए तो यह केवल जन्मदिन नहीं था, बल्कि परीक्षा से पूर्व अपने गुरु का आशीर्वाद लेने का अंतिम अवसर था। आयोजन की तिथि निकट आती जा रही थी। १६ मार्च के जन्मदिन पर एक भव्य सरप्राइज़ (आश्चर्य) देने के लिए सभी प्रतीक्षा कर रहे थे।

इन सभी तैयारियों के बीच, फरवरी के महीने में, मेरी मौसी के बेटे के विवाह में, पूज्य राणा साहेब अपनी ससुराल आए थे। वह मुलाकात, वह हँसी, वे स्नेहभरी बातें... किसे पता था कि परिवार का यह अंतिम मिलन था! उन्हें कहाँ भान था कि अपनी प्रिय वस्तुओं और प्रियजनों के बीच यह उनकी अंतिम उपस्थिति थी, और वे अब कभी लौटकर नहीं आएँगे। उस समय की प्रसन्नता के पीछे नियति ने एक अत्यंत करुण पर्दा छिपा रखा था।





कुदरत का क्रूर घात: ३ मार्च, २०२४

ठीक ३ मार्च को हमारे जीवन में वह भयानक भूचाल आया। राणा साहेब की जीभ के नीचे जो ‘छाला’ (चांदी) था, वह सामान्य नहीं था। जाँच के अंत में वह करुण समाचार मिला कि वह 'कैंसर' है। जीवन भर संघर्षमय जीवन जीने वाले, जिस जीभ से केवल ज्ञान और आशीर्वाद बरसाए गए थे, उसी जीभ में इस असाध्य रोग ने अपना घर बना लिया था। राणा

साहेब की निष्ठा के कारण ही उन्हें 'राणा' का सम्मान प्राप्त हुआ था, और अब वही महान व्यक्तित्व इस भयानक संघर्ष के मार्ग पर खड़ा था।

परिवार अंदर से पूरी तरह टूट गया। एक अकथनीय चिंता, एक भयानक अंधकार हमें घेरने लगा। दूसरी ओर, विद्यार्थी इस सत्य से सर्वथा अनभिज्ञ थे। वे तो अभी भी अपने प्रिय शिक्षक के जन्मदिन के आयोजन में व्यस्त थे। राणा साहेब की आँखों के पीछे अनिश्चितता और पीड़ा का एक नीरव महासागर छिपा हुआ था।

अंतिम कक्षा: १४ मार्च की करुण सुबह

इन तमाम व्यथाओं के बीच भी राणा साहेब का ध्यान अपने विद्यालय में ही अटका था। उन्हें बोर्ड की उत्तरपुस्तिकाएँ जाँचने (पेपर चेकिंग) का आदेश मिला था। वे सोच रहे थे, "अंतिम बार, मैं अपने हाथों से यह कार्य पूर्ण कर आऊँ।" परंतु किस्मत को कुछ और ही मंज़ूर था।

फिर आई १४ मार्च की वह सुबह। राणा साहेब सदा की भाँति कक्षा में प्रविष्ट हुए। उनके चेहरे पर आज एक अजीब सी शांति थी, जो सामान्यतः उनकी वाक्-पटुता में देखने को नहीं मिलती थी। उन्होंने समाजशास्त्र का एक गहन पाठ आरंभ किया, परंतु उनके शब्द आज गले में ही अटक रहे थे।

कक्षा समाप्त होने में केवल दस मिनट शेष थे, तभी उनकी जेब में रखा फोन वाइब्रेट हुआ। स्क्रीन पर 'डॉक्टर साहब' का नाम चमका। वे कक्षा से बाहर गए और फोन उठाया। डॉक्टर की आवाज़ शांत परंतु अत्यंत गंभीर थी: "आपको हमने दो दिन पहले रिपोर्ट देखकर सचेत किया था। अब और प्रतीक्षा करने का समय नहीं है। आपकी जीभ का जो छाला है, उसके लिए आज ही, हाँ आज ही, अस्पताल में भर्ती हो जाइए। हमारा प्रोसीजर तत्काल शुरू करना पड़ेगा।"

साहेब के कानों में डॉक्टर के शब्द गूँज रहे थे, परंतु उनका मन तो उस कक्षा में लौट रहा था। १६ मार्च... केवल दो दिन शेष! उनकी कर्मभूमि पर उनका अंतिम जन्मदिन! विद्यार्थियों का वह सरप्राइज़, उनकी आँखों में झिलमिलाता निष्पाप प्रेम... यह सब उन्हें स्मरण हो आया।

मौन विदाई: आँसुओं का वचन

उन्होंने धीमे कदमों से पुनः कक्षा में प्रवेश किया। विद्यार्थी शांत थे। साहेब ने चौक हाथ में लिया, पर लिख न सके। उन्होंने ब्लैकबोर्ड की ओर देखा, फिर अपने प्यारे विद्यार्थियों की

ओर। राणा साहेब की आँखों में अचानक जल भर आया। एक सिंह जैसा दृढ़ और पराक्रमी पुरुष, जिसने कभी किसी परिस्थिति के आगे झुकना नहीं सीखा था, उसकी आँखों में अश्रु धारा बह निकली। ये आँसू उन अधूरे रह गए स्वप्नों के थे। वे अब यहाँ इस १६ मार्च के सूर्योदय को नहीं देख सकेंगे।

एक भी शब्द बोले बिना, आँखों के कोने पोंछे बिना, उन्होंने चौक नीचे रख दिया। वे मौन थे, परंतु उनका वह मौन हज़ारों शब्दों से अधिक गर्जना कर रहा था।

कर्मभूमि पर यह अंतिम विदाई थी, पर खुशी का जाम अधूरा रह गया,

आँखों में आँसू आए, वह दुख नहीं था, विद्यार्थियों का निश्छल प्यार मजबूरी में छूट गया।

एक क्षण, केवल एक क्षण के लिए राणा साहेब ने अपनी प्रिय कक्षा को देखा, और फिर तेज़ी से स्टाफ रूम की ओर बढ़ गए। उनके चलने में आज वह स्वाभाविक गर्जना नहीं थी, बस एक अनिश्चित यात्रा का भारी बोझ था। बाहर निकलते समय वे केवल इतना ही कह सके: “शांति से सब पढ़ाई करना। हमारी मुलाकात बस यहीं तक थी...”

विद्यालय में वज्रपात और विद्यार्थियों की वेदना

राणा साहेब की पीठ मोड़ते ही कक्षा में मानो कोई वज्र गिर पड़ा हो। बच्चे समझ ही नहीं पाए कि आज हमारे प्रिय शिक्षक ऐसा क्यों बोल गए? उर्वशी के गले से एक सिसकी निकली— "साहेब... साहेब को क्या हुआ?" जयसिंह बेंच पर सिर रखकर फूट-फूटकर रो पड़ा। "हमने तो सब आयोजन किया था... १६ मार्च का! अब... अब क्या होगा?" रोशनी की आवाज़ में भय और घोर निराशा थी।

कुछ ही देर में संपूर्ण विद्यालय में यह समाचार दावानल की भाँति फैल गया कि राणा साहेब की स्थिति अत्यंत गंभीर है और वे अस्पताल गए हैं। ११वीं कक्षा का पूरा वर्ग ज़ार-ज़ार रो पड़ा। उर्वशी ने जो लंबी कविता लिखी थी, उसके अक्षर आँसुओं से धुँधले हो गए। उस कविता का प्रारंभ था: “हमारे राणा साहेब, ज्ञान के पावन दीपक हैं आप...” परंतु अब इस कविता का अंत कहाँ था?

उस दिन राणा साहेब विद्यालय से घर आए। हमारा पूरा परिवार एक मौन वेदना में डूबा हुआ था। वे अस्पताल में भर्ती हुए। हँसते हुए, बेफ़िक्र होकर, बिना किसी भय के वे ऑपरेशन थिएटर में गए। जिस जीभ से जीवन भर ज्ञान बाँटा, जिस जीभ से सत्य और प्रेम का संचरण

किया, आज उसी जीभ का एक बड़ा हिस्सा काट दिया गया। गर्दन से १७ लसीका ग्रंथियों (lymph nodes) का जटिल ऑपरेशन हुआ।

ICU का अंधकार और मेरे अश्रु

ऑपरेशन सफलतापूर्वक संपन्न हो गया था। मुझे (बेटे को) अंदर बुलाया गया। वह क्षण... वह दृश्य मैं अपने जीवन में कभी नहीं भूल सकता। मैंने अपने जीवन में उन्हें कभी इस अवस्था में नहीं देखा था। नाक और मुँह में नलियाँ, गर्दन पर भारी पट्टियाँ। उन्हें देखते ही मेरे हृदय का बाँध टूट गया। मैं बाहर आया और ज़ार-ज़ार रोने लगा। मुझे देखकर माँ और बहन भी रोने लगीं।

एक साथ तीन लोग वहाँ बिखर गए। इस जन्म में तो इस व्यक्ति से कभी किसी का बुरा नहीं हुआ था। ईश्वर का बंदा, जिसने हमेशा दूसरों का भला किया, उसकी आज यह दशा! ICU के अंदर खड़े रहकर मुझे समझ आया कि वास्तव में 'अपना' कौन है। माँ, मैं और बहन... हम तीनों टूट चुके थे, परंतु हमें मज़बूत बनना था, क्योंकि यह लड़ाई अत्यंत लंबी थी।

सबसे करुण जन्मदिन: १६ मार्च

आज १६ मार्च थी—जन्मदिन का दिन। परंतु आज के सूर्य का उदय कोई उत्सव लेकर नहीं आया था, बल्कि भय और वेदना की भयानक छाया लेकर आया था। शहर के अस्पताल के ICU वार्ड के बाहर का वातावरण अत्यंत श्वेत, शब्दहीन और ठंडा था। ICU के काँच के उस पार राणा साहेब जीवन के सबसे बड़े संग्राम में लड़ रहे थे। मशीनों का शोर, निरंतर चलती ईसीजी की रेखाएँ...

माँ ने रोते हुए कहा—"हे कृष्ण... आज तो इनका जन्मदिन है। यह कैसी लीला है तुम्हारी? मैंने कभी इस हाल में नहीं देखा इन्हें। इतना हँसमुख इंसान... आज... आज मशीनों के सहारे है।" बेटी अपने पिता के निश्चल चेहरे को निहारती रही।

मैं (बेटा) काँच के उस पार से अपने पिता की छवि को टकटकी लगाए देख रहा था। मेरे गले में एक भयानक घोटन भरी थी, जो बाहर आने को आतुर थी।

आपका यह मौन आज डराता है, पापा, आपकी वह गर्जना कहाँ है?

यह १६ मार्च तो खुशियों की थी न, इस वेदना का रिवाज़ कहाँ से जायज़ है?

मेरे मन में बचपन की स्मृतियाँ सजीव हो उठीं: "पापा, आप हमेशा कहते थे कि 'जीना हो तो राजा की तरह जियो।' परंतु... पापा, जन्मदिन के दिन मैंने आपको कभी इतना लाचार नहीं देखा। आज तो केक की मिठास होनी चाहिए थी, और यहाँ... यहाँ तो केवल दवाओं की कड़वाहट है।"

रात को ICU में मैं उनके पास था। लगभग दो बजे का समय होगा। बहन (नीलम) को तेज़ खाँसी आ रही थी। उनकी आँखें बंद थीं, परंतु उनका हाथ मेरे हाथ में था। अचानक, उन्होंने मेरे हाथ पर उँगलियों से धीरे-धीरे लिखा: “नीलम (बहन) को दवा लाकर दे। कितनी खाँसी आ रही है उसे।”

एक पिता जीवन और मृत्यु के बीच अंतिम संग्राम लड़ रहा है, जीभ कट चुकी है, फिर भी उनके मन में अपनी बेटी के लिए वही निस्वार्थ प्रेम, हमारे लिए वही गहरी चिंता थी। वे कभी अपने लिए नहीं जिए, केवल हमारे लिए जिए। उस क्षण लगा कि यह व्यक्ति केवल एक हाड़-मांस का शरीर नहीं है, यह तो प्रेम और त्याग का जीवंत पर्याय है।

विद्यार्थियों की अदृश्य ढाल

बाहर ११वीं और १२वीं कक्षा के विद्यार्थियों का समूह स्तब्ध खड़ा था। उर्वशी, जयसिंह, रोशनी... सभी मौन थे। कोई फूल नहीं लाया था, कोई कार्ड नहीं लाया था। वे जानते थे कि आज के दिन राणा साहेब को मिलने वाला एकमात्र उपहार उनका शीघ्र स्वस्थ होना ही है। सत्यपाल धीमे स्वर में बोला: "हम साहेब के सम्मान में आज एक भी आँसू नहीं बहाएँगे। हम सिद्ध करेंगे कि उनके शिष्य मज़बूत हैं। हमारी प्रार्थनाएँ, हमारा प्रेम... वही आज का सबसे बड़ा सरप्राइज़ है।"

उर्वशी ICU के काँच के सामने खड़ी थी, उसकी आँखें सूखी थीं, परंतु भीतर का शोक अगाध था। उसने मन ही मन अपनी अधूरी कविता को पूर्ण किया।

विद्यार्थियों की प्रार्थना (शायरी):

जन्मदिन की राह देखी, शृंगार का अवसर खो गया,

आज तो आँखों का दरिया बहा, हृदय का हर हर्ष रो गया।

राणा साहेब, आप लौट आइए, हमारे ज्ञान के अमर दीप!

हमारी प्रार्थना है, यह जंग जीतिए, बस यही उपहार भेजा गया।

मैं संध्या समय डॉक्टर की अनुमति से अंदर गया। मशीनों की आवाज़ कानों को बींध रही थी। मैंने पिता के मस्तक पर हाथ रखा—"पापा, आज १६ मार्च है। आपका दिन। आप हमेशा कहते थे कि 'सफलता वह है, जब आप जीवन की सबसे कठिन परीक्षा उत्तीर्ण करें।' पापा, यह आपके जीवन की सबसे बड़ी परीक्षा है, और मुझे अटूट विश्वास है कि आप इसमें भी प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण होंगे।"

मैं बाहर आया। मेरी आँखें लाल थीं, पर सिसकी दबी हुई थी। मैंने बहन का हाथ थामा और कहा, "माँ, पापा लड़ रहे हैं। और हमें यहाँ रोना नहीं है। पापा ने कभी हार मानना नहीं सीखा, और हम भी नहीं मानेंगे।"

१६ मार्च की रात्रि धीरे-धीरे ढल रही थी। राणा साहेब के अंतिम जन्मदिन का यह आयोजन केवल आँसुओं, मौन और प्रार्थनाओं की चादर में लिपटा हुआ था। इस उत्सव में कोई केक नहीं था, परंतु हज़ारों हृदयों की वह वेदना थी, जो राणा साहेब के जीवन के लिए एक अभेद्य अदृश्य ढाल बनकर खड़ी थी। यह दिन कभी भुलाया नहीं जा सकेगा, जहाँ प्रसन्नता और करुणा की रेखाएँ एक-दूसरे में विलीन हो गई थीं। राणा साहेब की जीवनगाथा संघर्ष, त्याग और अद्भुत प्रेम की पराकाष्ठा है। उन्होंने जो ज्ञान और संस्कार दिए, वे आज इन अनगिनत लोगों के अश्रुओं में बह रहे हैं।

"एक महान व्यक्तित्व के जीवन का यह अंतिम महासंग्राम था, जिसने सभी को भीतर तक झकझोर दिया, और साथ ही यह शाश्वत सत्य सिखाया कि सच्चा धर्म केवल निष्काम कर्म और निस्वार्थ प्रेम में ही निहित है।"

[२५] पीड़ा की गाथा

उनकी कहानी की शुरुआत किसी बीमारी से नहीं, बल्कि एक अद्भुत समर्पण से होती है। एक ऐसा जीवन, जिसे उन्होंने स्वयं अपने हाथों से गढ़ा था—पाई-पाई जोड़कर, निष्ठा की नींव पर। 'सरस्वती धाम'... यह केवल एक स्थान नहीं था, बल्कि उनके लिए साधना का मंदिर था। उन्होंने बिना वेतन के लगातार ३६ (36) महीनों तक अनवरत कार्य किया। उन वर्षों में दिन कहाँ से शुरू होता और कहाँ ढलता, इसका कोई हिसाब नहीं था। केवल लक्ष्य था, कर्तव्य था और भविष्य का एक स्पष्ट चित्र था। उन्होंने अपने विश्राम के हर क्षण, व्यक्तिगत सुख की हर इच्छा को परे रख दिया था। एक-एक पाई जोड़कर, सपनों को सींचकर वे यहाँ तक पहुँचे थे। उनका जीवन कभी शांत बैठने के लिए नहीं था; वे सदा दौड़ते रहे, निरंतर कर्मरत रहे। इतने कठोर संघर्ष के बाद, अब वह समय आया था जब शांति से बैठा जा सके, जीवन का आनंद लिया जा सके और अपनी हाड़-तोड़ मेहनत का फल पाया जा सके... किंतु नियति के मन में कुछ और ही लिखा था। यह दुख... यह बीमारी... ठीक उसी मोड़ पर उनके जीवन में एक भयानक चक्रवात की भाँति आ गई।

प्रारंभ में... वे दिन जब डॉक्टर साहब ने स्पष्ट कर दिया था कि जीभ का ७०% (70%) हिस्सा काटना पड़ेगा। वह निदान सुनते ही उनका शरीर जैसे जम सा गया था, किंतु मन भीतर ही भीतर चीत्कार कर रहा था। उनकी वह आवाज़... जो उनके अस्तित्व का अभिन्न अंग थी, वही अब उनसे छीनी जाने वाली थी। शल्यचिकित्सा (ऑपरेशन) के बाद के वे दिन असहनीय थे। जीभ कट चुकी थी, और वे अपनी बात किसी से कह नहीं पाते थे। विचारों का एक पूरा संसार उनके मस्तिष्क में घुमड़ता रहता, पर उसे बाहर लाने के लिए स्वर नहीं था। जो भी कहना होता... उन्हें लिखकर देना पड़ता। कागज़ और कलम उनके सच्चे मित्र बन गए। लिखते-लिखते उनके हाथ थक जाते, किंतु अपनी आवश्यकता, अपनी भावनाएँ, अपनी असह्य पीड़ा... सब कुछ उन्हें लिखकर ही व्यक्त करना पड़ता था। समय के साथ धीरे-धीरे बोलना संभव हुआ, पर उस आवाज़ में पहले जैसी स्पष्टता नहीं रही थी। शब्द मुख से निकलते तो लड़खड़ाते, टूटते और अधूरे रह जाते। वह प्रत्येक क्षण उन्हें स्मरण कराता था कि वे अब पहले जैसे नहीं रहे। ऑपरेशन की सफलता तो मिल गई थी, पर उनकी पहचान का एक बड़ा हिस्सा कहीं खो चुका था।

और फिर, ऑपरेशन सफलतापूर्वक हो गया... अस्पताल से छुट्टी भी मिल गई। स्वास्थ्य में सुधार था, मानो शरीर नया जीवन प्राप्त कर धीरे-धीरे पटरी पर लौट रहा हो। एक आशा जगी थी, परंतु इस आशा की छाया में एक कठोर सत्य छिपा था: अभी कीमोथेरेपी और रेडिएशन के दौर से गुज़रना था। वह रासायनिक प्रक्रिया, जो उन्हें भीतर से और तोड़ने वाली थी, किंतु उनके जीवन की शेष डोर को मज़बूत करने के लिए आवश्यक थी। अप्रैल महीने का प्रारंभ हुआ था। वे उसी नए जीवन की तैयारियों में संलग्न थे और घर पर ही थे, तभी ३ (3) अप्रैल के दिन उनका मुझे फ़ोन आया, जिसने पुनः मेरी दुनिया हिला दी। फ़ोन पर उनकी आवाज़ में एक भय था: उन्हें साँस लेने में अत्यंत कठिनाई हो रही थी... तुरंत अस्पताल जाना पड़े ऐसी स्थिति थी। अभी तो वे एक संकट से बाहर निकले थे, और यह दूसरा संकट द्वार पर आ खड़ा हुआ था। मैं अपनी कर्मभूमि पर था। मेरे मन में एक साथ अनगिनत विचार उमड़ने लगे। तुरंत घर पहुँचना आवश्यक था, पर मन की उथल-पुथल इतनी तीव्र थी कि शरीर जैसे स्तब्ध हो रहा था।

मैं कर्मभूमि से घर के लिए निकला। मन शीघ्रता से पहुँचने को आतुर था, परंतु नियति कुछ और ही चाहती थी। मार्ग में अचानक एक भयानक दुर्घटना (एक्सीडेंट) हो गई। वह केवल दुर्घटना नहीं थी, मानो किसी ने हमारे जीवन पर सीधा प्रहार किया हो! गाड़ी दस फ़ीट ऊपर उछली और एक नहीं, दो नहीं, बल्कि पूरी पाँच पलटी खा गई। पहली पलटी... पिताश्री का चेहरा; दूसरी पलटी... घर की चिंता; तीसरी पलटी... जीने की लालसा; चौथी पलटी... यदि मेरे साथ कुछ हो गया तो घर पर यह समाचार सुनकर क्या दशा होगी; और पाँचवीं पलटी... जीवन का संपूर्ण संघर्ष! गाड़ी की हर पलटी के साथ घर के विचार आ रहे थे कि यदि मुझे कुछ हो गया तो उनका क्या होगा? गाड़ी पूरी तरह नष्ट हो चुकी थी, लोहे का कबाड़ बन गई थी, परंतु चमत्कारिक रूप से किसी अदृश्य शक्ति ने शरीर की रक्षा की थी।

मैंने काँच तोड़कर किसी तरह बाहर निकलने का प्रयास किया। मेरे शरीर से रक्त बह रहा था, पर मुझे गंभीर चोट नहीं आई है... यह विश्वास दिलाना आवश्यक था। काँच तोड़कर बाहर निकलने के पश्चात मैं उसी लहूलुहान अवस्था में सीधे घर गया। पूरे परिवार ने मुझे उस स्थिति में देखा तो वे पूरी तरह टूट गए। उनकी आँखों में भय, चिंता और अथाह दुख का संगम देखकर सब रो पड़े। पिताश्री के मन पर तो मानो अपराधबोध का भारी बोझ आ गया था। उन्हें भीतर से लगा कि उनकी चिंता में उतावली करने के कारण यह दुर्घटना हुई। उनके मन का वह अपराधबोध स्पष्ट देखा जा सकता था। मैंने सबको शांत किया, "मुझे विशेष चोट

नहीं आई है, आप लोग अधिक चिंता न करें।" वह क्षण मानो एक नया जन्म था; मैं यमराज को छकाकर सकुशल लौट आया था।

इसके कुछ समय पश्चात, पुनः एक नया और लंबा संघर्ष आरंभ हुआ। रोज़ सुबह घर से निकलना, किराए की गाड़ी करके रेडिएशन के लिए 'सिम्स अस्पताल' (CIMS Hospital) डॉक्टर देवांग भावसार साहब के पास अहमदाबाद का निरंतर आना-जाना शुरू हुआ। प्रतिदिन राधीवाड़ से अहमदाबाद... वह यात्रा अत्यंत थका देने वाली थी। इस आने-जाने में वे, जीजाजी और माँ बारी-बारी से साथ रहते। संघर्षमय जीवन जीने वाले उस व्यक्ति का अब जब सब ठीक हो रहा था, तो जीने का पूरा संघर्ष जारी था। मार्ग में कई बार स्वास्थ्य बिगड़ता, पर वे हिम्मत नहीं हारते थे।

वे विद्यालय में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने गए... विदाई से पूर्व की उस मुलाकात में सभी की आँखों में प्रसन्नता और अश्रु दोनों थे। सब इस बात से प्रसन्न थे कि वे लौट आए हैं, पर इस बात से भयभीत थे कि इस संघर्ष का अंत कब होगा? परंतु संघर्ष अभी कहाँ समाप्त होने वाला था! जिस व्यक्ति को कभी धूप-गर्मी में बाहर नहीं निकलने दिया जाता था, वही व्यक्ति आज ४५ (45) डिग्री की भीषण गर्मी में रेडिएशन की यात्रा तय कर रहा था। वह उत्ताप केवल बाहर नहीं था, शरीर के भीतर भी जलन पैदा कर रहा था।

कीमो और रेडिएशन पूर्ण हो गए। डॉक्टर साहब ने जाँच की और घोषित किया: "अब आप कैंसर की समस्या से बाहर हैं, चिंता की कोई बात नहीं है।" वे शब्द सुनते ही लगा मानो संपूर्ण विश्व शांत हो गया हो। प्रति माह जाँच कराने को कहा गया। सब अत्यंत प्रसन्न थे; वे युद्ध जीत चुके थे।

और किस्मत की क्रूरता तो देखिए! पुनः उसी समय विद्यालय में सत्र की श्रीफल-विदाई का आयोजन रखा गया था। अंतिम बार सबसे मिलने का यह अवसर था, किंतु उस दिन तो अहमदाबाद का सबसे बड़ा अस्पताल सिम्स (CIMS) के केयर-रूम में उन्हें ड्रिप चढ़ रही थी। बाहर उत्सव का वातावरण था, और यहाँ नस-नस में बूँद-बूँद दवा उतर रही थी। परिचारिका (नर्स) भी परिचित थीं; जब उन्हें विदाई के कार्यक्रम का पता चला तो वे भी उदास हो गईं। जिस व्यक्ति को कहाँ होना चाहिए था, समय ने आज उसे कहाँ लाकर खड़ा कर दिया था! एक अत्यंत अमूल्य अवसर अस्पताल के बिस्तर पर बीत रहा था।

इस क्षणिक राहत के पश्चात, जब पुनः जाँच कराने गए तो उन्होंने कहा कि उन्हें एक तरफ़ दर्द हो रहा है। डॉक्टर साहब ने तुरंत पेट-स्कैन (PET Scan) कराने का निर्देश दिया।

अहमदाबाद की दैनिक यात्रा फिर आरंभ हो गई। पेट-स्कैन की रिपोर्ट आई और वह 'सस्पेक्ट' (संदिग्ध) निकली। डॉक्टर साहब ने उनके सामने ही कहा कि ऐसा प्रतीत होता है मानो बीमारी आपको धोखा दे रही है। उन्होंने समझाया: "मैं निश्चित रूप से नहीं कह रहा, पर एक लाख कैंसर रोगियों में से किसी एक के साथ ऐसा होता है, और दुर्भाग्य से आप उनमें से एक हैं।" बीमारी विपरीत दिशा में जा रही है। पहले जहाँ कैंसर था, वहाँ एकदम ठीक है। किंतु विपरीत दिशा में जो नई गाँठ है, वह रक्त की, पानी की या शायद कैंसर की हो सकती है। पेट-स्कैन की रिपोर्ट संदिग्ध है।

पिताश्री ने तुरंत पूछा, "क्या फिर से ऑपरेशन कर सकते हैं?" डॉक्टर साहब ने दृष्टि नीची करके कहा, "अब यह संभव नहीं है।" यह गाँठ मुख्य सफ़ेद नस पर है। "जैसे ही ऑपरेशन करेंगे, ९८% (99%) जोखिम है।" डॉक्टर साहब ने पुनः उनसे कहा कि यह पूर्णतः निश्चित नहीं है, पर आपका भाग्य ही ऐसा है। उन्होंने कहा, "पुनः कीमोथेरेपी और रेडिएशन देने पर भी कोई गारंटी नहीं है।"

और तत्पश्चात वे शब्द आए... जिन्होंने उनके जीवन की संपूर्ण दिशा बदल दी: "बिना किसी कष्ट के जब तक जीवन चल रहा है, उन्हें जीने दीजिए।" वे शब्द २५ (25) जुलाई २०२४ के थे, जो आज भी मेरे कानों में गूँजते हैं और हृदय को हिलाकर रख देते हैं।

डॉक्टर का वह निदान सुनने के पश्चात भी वे घूमते-फिरते रहे। बस स्टैंड पर बैठते। हम दोनों (पिता-पुत्र) को लगता कि कदाचित् यह गाँठ पानी या रक्त की ही होगी। वे एक-दूसरे को यही सांत्वना देते थे। किंतु वे दोनों ही डॉक्टर के उन शब्दों का भारी वज़न भली-भांति जानते थे।

वे सामान्य रूप से उठते-बैठते और घूमते रहे... परंतु यह रहस्य केवल हम दोनों ही जानते थे। वे कदापि नहीं चाहते थे कि घर के लोग, विशेषकर मेरी माँ, चिंतित हों। माँ ने इतना संघर्ष देखा था; यदि उन्हें यह सत्य ज्ञात हो जाता तो वे टूट जातीं। यह रहस्य, जो उनके जीवन का सबसे भारी बोझ था, केवल वे दोनों ही जानते थे; और उस गुप्त भेद को छिपाकर जीना ही उनके लिए जीवन का दूसरा सबसे बड़ा संघर्ष बन गया। बिना कष्ट दिए जीने देने के वे शब्द;

"२५ जुलाई २०२४ के वे शब्द, आज भी मुझे सुनाई देते हैं। यह उनकी अटूट हिम्मत और अकथनीय पीड़ा की अमर गाथा है।"

[२६] संघर्ष की कठिन रातें

१ अगस्त की वह सुबह, दिन की शुरुआत हमेशा की तरह स्वच्छ और नियमित थी। पिताजी, अपने स्वभावगत समयपालन के अनुसार, सुबह शेविंग कर रहे थे। सुबह के शांत वातावरण में, अचानक, बिना किसी पूर्व चेतावनी के, उनके शरीर में घबराहट की एक तीव्र लहर दौड़ गई। यह घबराहट सामान्य नहीं थी; वह प्राणघातक भय की थी, मानो शरीर के ढाँचे में से प्राण खिंच रहे हों। इस घटना की तीव्रता इतनी अधिक थी कि वे तुरंत घर के भीतर आए, और उसी क्षण, नियति ने अपना भयानक रूप दिखाया। अचानक उनकी आँखें फटी की फटी रह गईं, साँस रुकने लगी और पूरे घर तथा आँगन में एक चीख-पुकार मच गई, जो आज भी कानों में गूँजती है। वे आठ-दस सेकंड का समय, जिसने पूरे परिवार को मौनबंद कर रख दिया, ऐसा लगा मानो प्राण पखेरू उड़ ही गए हों और मृत्यु की छाया अचानक आकर खड़ी हो गई हो।

उस भयानक क्षण का वर्णन शब्दों से परे है, जहाँ समय थम जाता है और जीवन की डोर लटकने लगती है। मैं, उनका बेटा, तुरंत गाड़ी लेने के लिए दौड़ा। परंतु मन की अस्थिरता और शरीर में समाए भय का प्रभाव इतना गहरा था कि बस स्टैंड पहुँचने से पहले ही, मैं सड़क के बीचों-बीच खड़ा हो गया—मानो कदम आगे बढ़ाने के लिए शरीर तैयार ही न हो। उस क्षण लगा कि इस पूरी दुनिया का भारी दबाव मुझ पर आ गिरा है। किंतु पिता के सुदृढ़ व्यक्तित्व का स्मरण, और मेरे प्रति उनका अटूट विश्वास, मुझे तुरंत खींचकर होश में ले आया। मैंने तुरंत गाड़ी संभाली और अविलंब उन्हें लेकर अस्पताल पहुँचा। डॉक्टरों ने स्थिति को संभाला, किंतु वह राहत क्षणिक थी।

कुछ ही समय बाद, १८ अगस्त को पुनः उसी घटना की पुनरावृत्ति हुई, परंतु इस बार रात्रि में। अब आठ-दस सेकंड का वह भय और दरवाज़े के बीचों-बीच अचेत हो जाने की स्थिति एक दैनिक क्रम बन गई। इस रोग ने मानो अपना समय निश्चित कर लिया था। प्रति रात्रि १:१० बजे का समय होता, और उनके शरीर में वही असह्य पीड़ा, वही भयानक घबराहट और अचेत होने की घटना प्रारंभ हो जाती। नियमपूर्वक आधी रात को अस्पताल की ओर दौड़ना पड़ता, और अस्पताल पहुँचते-पूँछते वे पूरी तरह निढाल और थक जाते थे।

जीवन और मृत्यु की छाया के बीच एक अलौकिक मिलन

जैसे-जैसे इन रात्रियों की यातनाएँ बढ़ती गईं, वैसे-वैसे घर का वातावरण चिंता और भय से घिरता गया। हर रात १:१० बजे का समय एक भयानक अलार्म बनकर आता था। इस रोग की पीड़ा और दैनिक घटनाओं के बीच एक ऐसी रात आई, जिसने हमें भीतर तक हिलाकर रख दिया और जीवन के भौतिक सत्य पर एक प्रश्नचिह्न खड़ा कर दिया। रात के १२:४२ बजे का समय था; पिताजी सो रहे थे और हम सब चिंता में जाग रहे थे, तभी अचानक किसी ने दरवाज़ा खटखटाया। बाहर से आवाज़ आई: "पानी दीजिए।"

माँ मेरे पास आईं और धीमे स्वर में बोलीं कि बाहर कोई है जो पानी माँग रहा है। मैं, माँ और मेरी पत्नी तुरंत बाहर निकले। माँ ने एक बोतल से पानी काँच के गिलास में नहीं, बल्कि सीधे उस व्यक्ति के हाथ की अंजलि (अंजुलि) में ढारा। उस व्यक्ति ने अंजलि भरकर वह पानी पिया। पीने के बाद वह व्यक्ति थोड़ा आगे बढ़ा और फिर लौट आया। उसने माँ से कहा: "भोजन दीजिए।" मैंने तुरंत पूछा, "इस समय? इस समय क्या हो सकता है?" मेरे ऐसा कहते ही उसने कहा: "क्यों ऐसा कहते हो?" और वह व्यक्ति आगे बढ़ गया।

मैं, माँ और मेरी पत्नी—हम तीनों कुछ क्षण उस व्यक्ति को देखते ही रहे। घर के सामने स्ट्रीट लाइट के नीचे वह व्यक्ति खड़ा हुआ और अचानक एक पुकार लगाई: "बेटा प्रताप।" और वह व्यक्ति ओझल हो गया! हाँ, वह व्यक्ति वास्तव में अदृश्य हो गया!

अनेक लोगों को लगेगा कि ऐसा कैसे हो सकता है? क्या यह केवल एक भ्रम था? परंतु हम तीन लोगों ने साक्षात इस अलौकिक घटना का अनुभव किया था। सबसे चौंकाने वाली बात यह थी कि जहाँ उस व्यक्ति ने अंजलि में पानी पिया था, वहाँ सड़क पर पानी की एक बूँद या छिटकाव तक नहीं पड़ा था। सड़क एकदम सूखी थी। मेरा शरीर काँपने लगा—यह आज हमने क्या देखा? इस घटना ने हमें स्पष्ट संकेत दे दिया था कि यह संघर्ष केवल भौतिक शरीर का नहीं, बल्कि किन्हीं रहस्यमयी शक्तियों का है, और पिता जी की विदाई की घड़ी अत्यंत निकट आ चुकी है। इस घटना के बाद संघर्ष के उन कठिन दिनों में, सहारा देने के लिए मेरे मामा और माँ के भुवा (परिवार के वरिष्ठ) भी रोज़ रात को हमारे घर सोते थे, जो निरंतर देखरेख करते और परिवार को मानसिक संबल प्रदान करते थे।

रोग का छल और आत्मिक दृढ़ता का महासंग्राम

धीरे-धीरे कठिनाइयाँ बढ़ती जा रही थीं, और अब हम दोनों—मैं और पिताजी—यह भली-भांति जान चुके थे कि यह बीमारी हमें धोखा दे चुकी है। यह कोई सामान्य बीमारी नहीं थी;

हम दोनों समझ गए थे कि हम दुनिया के उन एक लाख में से एक रोगी की श्रेणी में आ गए हैं, जिसे चिकित्सा विज्ञान भी सरलता से स्पष्ट नहीं कर सकता।

कैंसर जैसी गंभीर बीमारी में जो असहनीय पीड़ा होती है, उसका वर्णन करना अत्यंत कठिन है; परंतु वे जिस भीषण यातना से गुज़र रहे थे, उसका वर्णन करना शायद उससे भी अधिक असंभव था। इसके बावजूद, उन्होंने कभी हमसे यह नहीं कहा कि "मुझे यहाँ दर्द हो रहा है" या "यह तकलीफ है।" इतनी विकट पीड़ा होने के बाद भी उस महापुरुष ने कभी एक चीख तक नहीं निकाली। जितना संघर्ष उन्होंने अपने संपूर्ण जीवन में किया था, उससे कहीं अधिक भीषण संघर्ष जीवन के इन अंतिम दिनों में था। उनका व्यक्तित्व जितना सुदृढ़ मैंने आज तक देखा है, वैसा बलिष्ठ व्यक्तित्व दूसरा कोई नहीं हो सकता। उन्होंने अपनी पीड़ा को भी नीलकंठ की भाँति पी लिया था, ताकि परिवार को तनिक भी दुख न हो। उनके चेहरे पर सदैव एक अदम्य आत्मविश्वास और असीम शांति बनी रहती थी।

उनकी वह सुदृढ़ मानसिकता, उनके प्रत्येक शब्द में निहित अटूट विश्वास और स्वाभिमान, मेरे लिए एक अमूल्य धरोहर है। उनके वे अंतिम शब्द, जो उन्होंने मेरे लिए कहे थे, मेरे कानों में सदैव गूँजते रहेंगे: "मेरा बेटा तो लाखों में एक है।" ये शब्द केवल एक पिता का पुत्र के प्रति प्रेम नहीं थे, बल्कि एक राजा का अपने भावी उत्तराधिकारी पर संपूर्ण विश्वास था। एक ऐसा व्यक्तित्व जो अंतिम साँस तक अडिग रहा, और जिसने अपने पुत्र को सबसे श्रेष्ठ माना।

संघर्ष के उन दिनों में, सेठ सी. जे. हाईस्कूल के प्रधानाचार्य हरेंद्रसिंह चंपायत साहब, रमेशभाई प्रजापति और पंड्या साहब (सुपरवाइज़र) उन्हें एक शिक्षक के रूप में उनकी सेवानिवृत्ति (विदाई) का निमंत्रण देने के लिए मिलने आए थे। यह उनके स्वर्ण कार्यकाल के समापन और सेवानिवृत्ति के सम्मान का अवसर था। किंतु जब उन गणमान्य महानुभावों ने उनकी यह स्थिति देखी, तो उनके हृदयों को गहरा आघात लगा।

संध्या समय मुझे प्रधानाचार्य जी का फ़ोन आया। उनके स्वर में दुख और सम्मान दोनों घुले थे: "हमने विदाई समारोह स्थगित कर दिया है। जब हमारा राजा ही उपस्थित न हो, तो उनका यह उत्सव अभी हम नहीं रख सकते।" उनकी ऐसी अवस्था में वह कार्यक्रम आयोजित नहीं किया जा सकता, यह कहकर उन्होंने समारोह को टाल दिया। इसके बावजूद पिताजी की निस्वार्थ भावना छलक उठी। वे कहते थे: "मेरे कारण कार्यक्रम को मत रोकिए। मैं नहीं आ सकूँगा तब भी विदाई संपन्न कर दीजिए। मेरा बेटा अवश्य आएगा।" उनके शब्दों में कितनी महान उदारता थी कि अपने जीवन के सबसे महत्त्वपूर्ण अवसर की तुलना में भी, दूसरों का

कार्यक्रम बाधित नहीं होना चाहिए—ऐसा उनका भाव था। यही उनका राजसी और सर्वोपरि व्यक्तित्व था।

धीरे-धीरे समय और अधिक क्रूर होता गया। शारीरिक रूप से वे क्षीण पड़ते गए। सबसे पहले वाणी धीरे-धीरे शांत हो गई। फिर एक हाथ और एक पैर की हलचल भी बंद हो गई। शरीर मानो धीरे-धीरे आत्मा का साथ छोड़ रहा था। ये वही व्यक्तित्व थे जिन्होंने अपना संपूर्ण जीवन अनवरत संघर्ष में व्यतीत किया था। एक अत्यंत सूक्ष्म शुरुआत से उन्होंने अपना साम्राज्य खड़ा किया था—केवल धन-संपदा का नहीं, बल्कि मान-सम्मान, अगाध ज्ञान और अनगिनत विद्यार्थियों के निश्छल प्रेम का साम्राज्य।

और जब, संपूर्ण जीवन के इस अथक परिश्रम के पश्चात, शांति से बैठने और विश्राम करने का समय आया, तब कुदरत ने उन्हें अपने पास बुला लिया। यह घटना जीवन की चरम क्रूरता को दर्शाती है। ऐसा प्रतीत होता था मानो प्रकृति ने उन्हें उनका न्यायसंगत अधिकार नहीं दिया; जो व्यक्ति जीवन भर योद्धा की भाँति लड़ा, उसे अंत में शांति भी नसीब न हो सकी। इस यातना और विवशता को देखना उनके परिवार के लिए सबसे बड़ी पीड़ा थी। ५ नवंबर की उस पावन सुबह, गुजराती साहित्य के इस अनमोल रत्न ने सदा-सदा के लिए इस नश्वर संसार को अलविदा कह दिया। इस धरा का सबसे सुदृढ़ व्यक्तित्व, वह 'राजा इंसान', अब मंच का पर्दा गिरा चुका था, परंतु अपना नाम इतिहास के पन्नों में अमर कर गया।

दिवंगत प्रतापसिंह किशोरसिंह चौहान की अंतिम यात्रा राधीवाड़ गाँव स्थित उनके गृह से निकली, और उस दृश्य को देखकर संपूर्ण ग्राम स्तब्ध और मूक हो गया। उनकी अंतिम यात्रा में उमड़ा जनसैलाब ही उनकी महानता का जीवंत प्रमाण था। दूर-दूर तक जहाँ तक दृष्टि जाती थी, केवल जन-समुद्र ही दृष्टिगोचर होता था। वह भीड़ किसी राजनीतिज्ञ की नहीं थी, बल्कि एक ऐसे 'राजा इंसान' की थी जिसने अपने असीम प्रेम और ज्ञान से जन-जन के हृदय पर निष्कंटक राज्य किया था।

'बापू साहेब' और 'राणा साहेब' के नाम से विख्यात इस महान आत्मा ने विद्यार्थियों के हृदयों में जो विशिष्ट स्थान बनाया था, वह अपार जनसमूह उसी की गवाही दे रहा था। समाज के हर वर्ग में एक अपूरणीय क्षति हुई थी, मानो सबने अपने सिर से एक पूज्य वटवृक्ष की छत्रछाया खो दी हो। वह नीरव मौन, वे ढलकते अश्रू, वह अगाध आदर—यह सब उनके विराट व्यक्तित्व का साक्षात प्रमाण था। और अंततः, वह महान आत्मा पंचतत्व में सदा-सदा के

लिए विलीन हो गई। परिवार पूरी तरह बिखर चुका था, किंतु उनकी पावन स्मृतियाँ सदैव एक अमर शक्ति बनकर साथ रहेंगी।

उनकी अंतिम विदाई की गाथा में एक अत्यंत हृदयविदारक और भावुक प्रसंग भी जुड़ा हुआ है। उनके जीवन के दुख और संघर्ष के दिनों की जो सच्ची संगिनी थी—उनकी प्रिय भैंस, जिसे वे अपने परिवार के सदस्य की भाँति मानते थे—उसने भी उसी दिन उनके घर का साथ छोड़ दिया। मानो उनके वे शब्द सत्य सिद्ध हो गए हों कि जिसने जीवन भर संघर्ष में साथ दिया, वह अंतिम विदाई का क्षण भी उनके साथ ही पूर्ण करके जाएगी। यह घटना प्रकृति के साथ उनके गूढ़ आत्मीय संबंध को दर्शाती है, और परिवार के लिए यह आघात के ऊपर दूसरा आघात था।

इतनी भारी क्षति और इतनी अगाध पीड़ा को सहन करना असह्य था। उन दिनों में, मैं अकेला एकांत में फूट-फूटकर रोता था, और अपनी तन्हाई में उस दुख के भारी बोझ को हल्का करने का प्रयास करता था। परंतु माँ और बहन के सामने मुझे पर्वत की भाँति सुदृढ़ बनकर खड़े रहना था। वह दृढ़ता, वह महान संयम, मुझे कदाचित् उन्हीं की महान धरोहर से प्राप्त हुआ है। "मेरा बेटा तो लाखों में एक है"—इन पावन शब्दों को सार्थक सिद्ध करने के लिए मुझे उनके इस विशाल साम्राज्य का मुख्य स्तंभ बनकर खड़े रहना था।

दिवंगत प्रतापसिंह किशोरसिंह चौहान साहब के देवलोकगमन से उत्पन्न हुआ शून्य कभी भरा नहीं जा सकता। उनका संपूर्ण जीवन, उनका अनवरत संघर्ष, शिक्षा के प्रति उनका अगाध समर्पण और 'बापू साहेब' व 'राणा साहेब' के रूप में उनकी कालजयी पहचान—यह सब सदैव एक प्रकाश-स्तंभ बनकर आने वाली पीढ़ियों का मार्ग आलोकित करता रहेगा।

"वे केवल एक व्यक्ति नहीं थे, बल्कि एक पूर्ण युग थे, जिनका नाम सदैव अमर रहेगा।"

[२७] साहेब की भावपूर्ण अंतिम यात्रा

नमस्कार बापू साहेब, स्व. प्रतापसिंह किशोरसिंह चौहान

यह विदाई केवल एक भौतिक शरीर का प्रस्थान नहीं थी, बल्कि एक स्वर्णिम युग के अंत की मौन पुकार थी।

मस्तिष्क पर स्मृतियों का भारी बोझ और आँखों में उनकी एक-एक याद मानो मुझे वहीं रोक लेना चाहती है... बंद आँखों के सामने भी सब कुछ किसी फ़्लैशबैक की भाँति तैर रहा है। पिताजी को हँसते हुए देखना, उनका घर लौटना, उनके चेहरे की मुस्कान के पीछे छिपी हुई अथक थकान और मितव्ययिता... पिताजी को गले लगाकर रोना, अनायास ही मुख से निकले कुछ शब्द, और मेरी पीठ पर उनका वह ढाढ़स बँधाता हुआ थपकी भरा स्पर्श... हर एक क्षण को मैं खुली आँखों से जीवंत देख रहा था।

५ नवंबर की वह पावन सुबह, सूर्य तो उदित हुआ था, परंतु राधीवाड़ गाँव के अवकाश पर मानो किसी भीषण रात्रि का गहरा अंधकार छा गया था। संपूर्ण ग्राम स्तब्ध और मूक हो गया था, वृक्षों के पत्तों की सरसराहट थम गई थी, और पशु-पक्षी भी मानो यह समझ गए थे कि उनका राजा, उनका मार्गदर्शक, उनका शिक्षक अब अनंत निद्रा में सो चुका है। उस दिन गुजराती साहित्य के इस अनमोल रत्न ने अंतिम अलविदा कह दिया था, किंतु उनका स्नेहमयी साया अब भी घर के मुख्य द्वार पर अडिग खड़ा था—मानो अब भी अपने पुत्र को "लाखों में एक है" कहकर असीम साहस प्रदान कर रहा हो।

जब उनके नश्वर देह को गृह से बाहर लाया गया, तब चौतरफा एक ऐसा नीरव मौन छा गया मानो धरा के समस्त स्वर उस स्तब्धता में विलीन हो गए हों। वह मौन चीखों से भी अधिक तीव्र था, और अश्रुओं से भी अधिक खारा था।

> अब तो केवल स्मृतियों की महफ़िल सजेगी,
> आपका पावन नाम ही यहाँ गूँजता रहेगा;
> शरीर के ये बंधन भले ही टूट गए,
> हमारे हृदयों में आपका साया सदा जीवित रहेगा।

यह वह अंतिम विदाई थी, जिसके औपचारिक आमंत्रण को कुछ ही दिन पूर्व प्रधानाचार्य जी और शिक्षक वृंद ने उनके अस्वस्थ शरीर को देखकर स्थगित कर दिया था। किंतु विधाता की विदाई को भला कौन रोक सकता है? वह 'राजा इंसान' स्वयं प्रस्थान के लिए तत्पर नहीं था, परंतु नियति का विधान अत्यंत निष्ठुर होता है। जब उनके पार्थिव शरीर को काँधों पर उठाया गया, तब केवल काँधे ही नहीं, बल्कि संपूर्ण ग्राम के हृदय पर उनके lifelong संघर्ष और असह्य पीड़ा का भारी बोझ आ पड़ा। प्रत्येक कदम अत्यंत धीमा था, और हर साँस भारी थी।

जब राधीवाड़ गाँव की गलियों से पूज्य स्व. प्रतापसिंह साहेब की अंतिम यात्रा गुज़री, तब वह दृश्य केवल एक शव-यात्रा नहीं, बल्कि उनकी विराट महानता का जीवंत प्रमाण-पत्र था। वह एक विशाल जन-समुद्र था, जिसने गाँव के संकीर्ण मार्गों को भी छोटा कर दिया था। सुदूर तक जहाँ भी दृष्टि जाती थी, केवल शीश ही शीश दिखाई देते थे। श्वेत वस्त्रों में ढका हुआ जन-प्रवाह शांत तो था, परंतु भीतर आंसुओं का तूफ़ान छिपाए बह रहा था।

वह अपार जनसमूह किसी राजनीतिक या धार्मिक आयोजन का नहीं था, बल्कि एक ऐसे महापुरुष के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने आए हज़ारों लोगों का था, जिन्होंने अपने संपूर्ण जीवन में केवल देना सीखा था—अगाध ज्ञान, अमर प्रेरणा और अटूट आत्मविश्वास। बापू साहेब ने कभी किसी से कुछ पाने की आकांक्षा नहीं रखी; उनके जीवन की वास्तविक कमाई यही थी कि उन्होंने हर व्यक्ति को कुछ न कुछ दिया था। उन्होंने निर्धन-धनी, जाति-पांति के भेदभाव से परे उठकर प्रत्येक विद्यार्थी और हर ज़रूरतमंद की हृदय से सहायता की थी।

उस जनसैलाब में समाज के हर वर्ग और हर तबके के लोग उपस्थित थे। वे लोग जिन्हें उन्होंने पढ़ने के लिए अपनी पुस्तकें दी थीं, वे जिनकी उन्होंने गुप्त रूप से सहायता की थी, और वे जिन्हें उन्होंने 'बापू साहेब' के अपने ऊँचे पद से उठकर जीना सिखाया था। हर आँख में छलछलाते अश्रू थे और प्रत्येक हृदय में एक असीम वेदना थी।

एक शिष्य के अश्रू: उस अपार भीड़ में एक वयोवृद्ध शिष्य, जो स्वयं अब एक शिक्षक बन चुका था, फूट-फूटकर रो रहा था। उसने रुंधे हुए कण्ठ से कहा, "बापू साहेब ने मुझे केवल अक्षर ज्ञान नहीं दिया था, बल्कि एक सच्चा मनुष्य बनना सिखाया था। आज मेरे सिर से पितृतुल्य छत्रछाया उठ गई।" यह विशाल जनसमूह ही इस बात का साक्षात प्रमाण था कि उनका व्यक्तित्व कितना महान था और उन्होंने कितने हृदयों में अपना स्थायी स्थान बनाया था। यह यात्रा केवल एक व्यक्ति की नहीं, बल्कि एक महान आदर्श की विदाई थी।

उनके अंतिम दिनों में घटी वह अलौकिक घटना—जब मध्यरात्रि १२:४२ बजे किसी अज्ञात जीव ने आकर अंजलि में जल माँगा और तत्पश्चात "बेटा प्रताप" कहकर ओझल हो गया—उसका स्मरण आज भी परिवार के हृदय में एक कंपकंपी उत्पन्न कर देता है। वह आकृति भले ही अदृश्य हो गई हो, परंतु उसका वह "बेटा प्रताप" पुकारना और जहाँ जल पिया था वहाँ सड़क पर पानी की एक बूँद तक न गिरना—यह सब इस बात का स्पष्ट संकेत था कि उनका प्रभाव केवल इस नश्वर भौतिक संसार तक सीमित नहीं था।

इतनी विकट पीड़ा, इतना भीषण संघर्ष और उसके पश्चात यह अलौकिक संकेत—यह सब मेरे मन को एक निरंतर वेधने वाली वेदना में डुबो देता है। मैं एकांत में अकेला फूट-फूटकर रोता था और पिता की अनमोल क्षति का भारी बोझ सहने का प्रयास करता था। परंतु माँ और बहन के सम्मुख मुझे पर्वत की भाँति सुदृढ़ बनकर खड़े रहना था। वह आत्मिक शक्ति, वह अभूतपूर्व संयम मुझे अपने पिता के उन्हीं अमर शब्दों से प्राप्त हुआ था: "मेरा बेटा तो लाखों में एक है।" उनके इन शब्दों को सत्य सिद्ध करने के लिए मुझे परिवार के लिए एक अभेद्य प्राचीर बनकर खड़े रहना था।

अंतिम यात्रा श्मशान घाट पहुँची। जहाँ उनका वह देह—जिसने जीवन भर अनवरत संघर्ष किया था और अंतिम महीनों में असह्य शारीरिक यातना सही थी—अब पंचतत्व में विलीन होने जा रहा था। जब अग्नि की लपटों ने उनके नश्वर शरीर को स्पर्श किया, तब केवल देह ही नहीं जला, बल्कि हमारे हृदयों का एक बहुत बड़ा भाग भी उन ज्वालाओं में सदा के लिए भस्म हो गया। उस क्षण परिवार पूरी तरह बिखर गया था। उनका जीवन-संघर्ष, उनकी अटूट सुदृढ़ता, उनका असीम वात्सल्य और उनकी संपूर्ण कमाई—उनके हृदय में सुरक्षित वे अनमोल शब्द—सब कुछ एक दिव्य ज्योति बनकर आकाश की अनंत गहराइयों में लीन हो गया।

> "वह पर्दा भले ही गिर गया, पर नाटक अमर कर गए,
> माटी भले मिल गई माटी में, पर नाम अमर कर गए।
> ज़िंदगी की अंतिम साँस में भी जिसने हिम्मत न छोड़ी,
> वह 'राजा इंसान' आज इस दुनिया को अलविदा कह गया।"

उनका अमर नाम—स्व. प्रतापसिंह किशोरसिंह चौहान साहेब—अब सदैव हमारे हृदयों में एक प्रकाश-स्तंभ बनकर जगमगाता रहेगा।

"उनकी पावन स्मृतियाँ, उनका अद्वितीय संघर्ष और उनका असीम वात्सल्य जीवन भर हमारा मार्ग आलोकित करता रहेगा।"

[२८] शोक सभा

"जिसने हमें हँसना सिखाया,

आज उसकी याद में आँखें नम हैं।

आप हमारे बीच नहीं हैं,

पर आपकी यादें हमेशा हमारे साथ रहेंगी।"

'Miss You So Much Papa You were my world for me and you will remain so'

कुछ लोग केवल जीवन जीकर चले जाते हैं, और कुछ लोग जीवन को एक अमर संदेश दे जाते हैं। हमारे 'राणा साहेब', जिन्हें हमने 'संघर्षमयी व्यक्तित्व' और 'अधूरी विदाई वाले राणा साहेब' कहा है, वे शायद दूसरी श्रेणी में आते हैं। उनका जाना केवल एक व्यक्ति का अंत नहीं है, बल्कि एक युग का मौन है, एक संघर्षपूर्ण अध्याय का अप्रत्याशित विराम है। आज, जब उनका भौतिक शरीर हमारे बीच नहीं है, तब जाकर समझ आता है कि उनका अस्तित्व कितना विशाल था। जीवन भर सादगी के वस्त्र पहनकर घूमने वाला यह व्यक्तित्व, विदा लेते समय पूरे गाँव को शोक के वस्त्र पहना गया। इस क्षण तो यही कहना पड़ता है:

कौन कहता है कि मौत आई तो मर जाओगे,
तुम तो दरिया हो, समंदर में उतर जाओगे।
राहतें ज़िंदगी में कम हों तो क्या हुआ,
तुम तो लोगों के दिलों में सदा रह जाओगे।

उनका जीवन संघर्ष की एक खुली किताब था। उन्होंने कभी अपने मुख से अपनी प्रशंसा नहीं की, कभी पद या प्रतिष्ठा के पीछे नहीं भागे। वे तो बस, अपने कर्म को ही अपनी पहचान मानते थे। परंतु, जब उनकी विदाई हुई, तब जो दृश्य निर्मित हुआ, वह आँखों में आँसू के साथ हृदय में एक सत्य स्थापित कर गया: पदवियों से नहीं, बल्कि प्रेम से ही मनुष्य महान बनता है।

यह 'अधूरी विदाई' हर उस पुत्र की गाथा है, जिसने अपने पिता की अनुपस्थिति में उनके अस्तित्व की महान धरोहर को अनुभव किया है। विदाई के दिन ही पता चला कि मेरे पिता केवल मेरे पिता नहीं थे, वे तो एक विशाल वटवृक्ष थे, जिसने न जाने कितने लोगों को अपनी शीतल छाया प्रदान की थी। उनके देवलोकगमन के पश्चात मैंने ऐसे-ऐसे चेहरे देखे, जिन्हें मैंने पहले कभी नहीं देखा था, किंतु उनकी आँखों में बहते अश्रू चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे थे कि यह दुख केवल मेरे परिवार का नहीं है।

उनकी इस महानता का साक्षात प्रमाण उनके 'बेसाणा' (शोक सभा) में देखने को मिला, जहाँ जो जनसैलाब उमड़ा था, वह कोई साधारण घटना नहीं थी। गांधीनगर और अहमदाबाद शहर के उच्च अधिकारी, शिक्षक गण, और विभिन्न तालुकाओं व जिलों के प्राध्यापक, पुलिस निरीक्षक (P.I.), उप-जिलाधिकारी (Deputy Collector), और यहाँ तक कि वरिष्ठ राजनीतिज्ञ भी वहाँ उपस्थित थे। यह कोई राजनीतिक या सामाजिक सभा नहीं थी, यह तो केवल एक निष्कलंक, पवित्र आत्मा को दी गई अश्रुपूरित भावांजलि थी। वे अधिकारी, जो सदैव नियमों और प्रक्रियाओं के कठोर ढाँचे में जीते हैं, वे भी समय निकालकर, अपने सारे प्रोटोकॉल तोड़कर, इस 'सादे' इंसान की स्मृति में नतमस्तक होने आए थे। यह इस बात का निर्विवाद प्रमाण है कि राणा साहेब का व्यक्तित्व कितना विराट और प्रभावकारी था। उन्होंने कभी किसी से कोई अपेक्षा नहीं रखी, परंतु जब समय आया, तब इस संपूर्ण समाज ने स्वयं आगे बढ़कर उनका ऋण चुकाया। उनकी स्मृति में, हर कोई बस एक ही बात कहना चाहता था: इस इंसान ने हमारे जीवन के किसी न किसी कोने में आशा का एक दीपक अवश्य प्रज्वलित किया था।

फ़र्श से अर्श तक सफ़र देखा, उसने किसी शख़्स का नहीं प्यार का।

जिसका क़द छोटा रहा दुनिया में, उसका क़द बहुत ऊँचा रहा लोगों के दिल में।

इन अधिकारियों और संगठनों के दिग्गजों का आना केवल औपचारिक सम्मान देना नहीं था, बल्कि इस सत्य की सहर्ष स्वीकृति थी कि सत्ता की कुर्सी से कहीं अधिक महान वह इंसान होता है जो सेवा और सादगी की मिट्टी से जुड़ा रहता है। यह इस बात का प्रमाण था कि राणा साहेब का कार्यक्षेत्र केवल शेठ सी. जे. हाईस्कूल के कक्षा-कक्ष तक सीमित नहीं था, बल्कि वह समाज के हर स्तर तक फैला हुआ था।

श्रद्धांजलि सभा में एक वयोवृद्ध किसान लडखडाती आवाज़ में खड़े हुए। उन्होंने मुझसे कहा, "उन्होंने कभी मेरी प्रत्यक्ष मदद नहीं की थी... पर उन्होंने मुझे कभी जीवन में पिछड़ने भी नहीं

दिया। जब मेरे खेत पर कर्ज़ का भारी बोझ था, तब आपके पिता ने अपनी एकमात्र पुरानी सोने की अंगूठी गिरवी रख दी थी। उन्होंने मुझसे कहा था, 'ज़मीन मत बेचना, ज़मीन तो माँ होती है।' उन्होंने कभी यह बात किसी को नहीं बताई, और न ही कभी वह अंगूठी वापस लेने आए।" उनकी यह बात सुनकर मेरा गला रुँध गया। तब मुझे समझ आया कि मेरे पिता का व्यक्तित्व बर्फ़ के उस विशाल पहाड़ (आइसबर्ग) जैसा था, जिसका केवल एक छोटा सा हिस्सा ही हमने देखा था, बाकी का विशाल हिस्सा तो लोगों के हृदयों में गहराई तक समाया हुआ था।

हालाँकि, सम्मान की इस अनवरत श्रृंखला के बीच भी, राणा साहेब की वास्तविक पूँजी, उनकी अनमोल धरोहर कहीं और ही रची-बसी थी—उनके कक्षा-कक्ष में। शेठ सी. जे. हाईस्कूल की ११वीं और १२वीं कक्षा का वह कमरा, जो भविष्य के निर्माण की एक प्रयोगशाला था, जहाँ राणा साहेब अपने अगाध ज्ञान और जीवन-दर्शन का सिंचन करते थे। बच्चे घर आए और बेटियाँ जिस तरह फूट-फूटकर रोईं... इस एक पंक्ति में उनके पूरे जीवन का सार समाहित है। शिक्षक और छात्र का संबंध प्रायः औपचारिक होता है, परंतु राणा साहेब का नाता तो पितृतुल्य और एक सच्चे मार्गदर्शक का था।

ये दौलत-ए-दिल कभी ख़त्म नहीं होती, मिलकियत तो ज़मीं पर ही रह जाएगी।

उसके आँसू जो बह रहे हैं कमरों में, वही तेरी सबसे बड़ी कमाई कहलाएगी।

उनके विद्यार्थियों के बहते हुए अश्रू, उनके दिलों में राणा साहेब के प्रति समाए अगाध आदर और निश्छल प्रेम का जीवंत प्रतीक थे।

इस निःस्वार्थ पूँजी की जड़ें उनके संघर्षमयी जीवन की सादगी में निहित थीं। अत्यंत कठिन संघर्षों से गुज़रने के बावजूद, उन्होंने कभी किसी से कोई शिकायत नहीं की। उनकी सादगी ही उनका सबसे बड़ा वैभव थी। यही कारण था कि उनके मित्रों ने आकर मुझसे कहा कि उनके पिता ने कभी किसी की त्रुटियों या भूलों की चर्चा नहीं की। जब भी किसी ने पूछा कि 'अमुक व्यक्ति में क्या कमी है?', तो वे सदैव यही कहते: "ईश्वर से पूछो, मनुष्य की कमियाँ देखना हमारा काम नहीं है।" उनकी यह क्षमाशीलता और परोपकार की भावना ही उनका सच्चा वारासत (उत्तराधिकार) था, जिसने राणा साहेब को और अधिक कोमल व महान बना दिया था। इसी कारण गांधीनगर के उच्च अधिकारी भी उनके देवलोकगमन पर यह कहने के लिए विवश हो गए कि इस इंसान की निष्ठा, सत्यनिष्ठा और सादगी अतुलनीय थी।

क्या मिला लकड़ी के महल बना के हमें, लोगों के दिल में घर बनाने का हुनर उन्होंने सिखाया था।

वो फ़कीर होकर भी सबसे अमीर थे, हमने आँखों से देखा था, जिनके सर पर ममता का साया था।

उनकी यह सादगी और सत्य की अनुभूति उनकी वाणी में भी स्पष्ट झलकती थी। राणा साहेब के व्यक्तित्व को श्रद्धांजलि देने के लिए केवल साधारण शब्द पर्याप्त नहीं हैं।

राणा साहेब! आप केवल एक शिक्षक नहीं थे, आप स्वयं में एक संपूर्ण संस्था थे। आप एक ऐसा सुदृढ़ सेतु थे जिसने अनगिनत विद्यार्थियों को अज्ञानता के अंधकारमय तट से ज्ञान और सफलता के स्वर्णिम तट तक पहुँचाया। आपकी बोली में जो नम्रता थी, वही नम्रता आपके व्यक्तित्व को धारदार और प्रभावशाली बनाती थी। आज, जब आप यह 'अधूरी विदाई' लेकर चले गए हैं, तब हम समझ पा रहे हैं कि आपका जाना अधूरा इसलिए है क्योंकि जो जीवन-मूल्य आपने स्थापित किए हैं, वे कभी समाप्त होने वाले नहीं हैं; वे सदैव अमर और जीवंत रहने वाले हैं।

हम तो आते हैं और चले जाते हैं,
दुनिया याद उन्हें रखती है जो हृदय में घर बनाते हैं।
ये कारवाँ तो चलता रहेगा सदियों तक,
लेकिन क़लम भी सर झुका देगी जब बात आपकी आती है।

मैं अपने पुत्र से भी कहूँगा कि 'तू मेरे जैसा नहीं, बल्कि अपने दादाजी जैसा बनना।' आपके विशाल व्यक्तित्व तक पहुँचने के लिए मैंने अपने स्तर पर अथक प्रयास किए, परंतु मुझे समझ आ गया कि मैं अपने पिता जैसा कभी नहीं बन सकता, क्योंकि एक पुत्र के रूप में मैं उनके इस असीम ऋण को कभी नहीं चुका सकता।

"मेरे मन की वह भीषण चीख जो आपको रोक न सकी,

मेरे मन का वह कोना जो ईश्वर से लड़ रहा था, शिकायत कर रहा था कि आख़िर इस निष्पाप इंसान का क्या दोष था,

मेरे मन की वह करुण पुकार जो आपसे केवल कुछ क्षण मेरे पास ही ठहर जाने की भीख माँग रही थी..."

अंततः, इस अखंड जीवन-गाथा का निष्कर्ष बस इतना ही है: राणा साहेब, 'बापू साहेब'! आपका जीवन एक खुली किताब था, जिसने इस संपूर्ण जगत को सिखाया कि वास्तविक महानता कहाँ छिपी होती है। आपने यह सिद्ध कर दिया कि धन-संपदा केवल क्षणिक सम्मान देती है, परंतु पवित्र चरित्र, सादगी और निःस्वार्थ प्रेम शाश्वत और अमर सम्मान दिलाते हैं।

अश्रु देखे मैंने अनजान लोगों की आँखों में, तब समझ आया,

मेरा पिता केवल मेरा नहीं था, वह तो हर हृदय में बसने वाले के लिए एक शीतल छाँव था।

अंगूठी गिरवी रखकर दूसरे का सपना पूरा किया, यह बात कभी किसी से नहीं कही,

एक शांत समंदर थे वे, जिसने दुनिया का सारा खारापन स्वयं पी लिया था।

आप जीवन जीकर गए, अनवरत संघर्ष सहकर गए, पर जाते-जाते यह बात सिद्ध कर गए कि

एक अकेला इंसान भी यदि हृदय से जिए, तो उसकी विदाई हर दिल में रहने वाले को झकझोर सकती है।

गांधीनगर के अधिकारियों और अहमदाबाद के शिक्षकों का आना, और शेठ सी. जे. हाईस्कूल की बेटियों का फूट-फूटकर रोना—

यही आपकी 'सच्ची कमाई' थी। आज, आपकी इस 'अधूरी विदाई' पर, हम आपको कोटि-कोटि नमन करते हैं और पंक्तियों के अंतिम शब्दों के साथ आपकी आत्मा की चिर शांति हेतु ईश्वर से प्रार्थना करते हैं:

रोशनी बनके आए थे आप इस जहाँ में, हमको दिखाई राह बड़ी ऊँचाई की।

राणा साहेब, आपका नाम हमेशा ज़िंदा रहेगा, क्योंकि आप जिए थे ज़िंदगी सच्चाई की।

"आपकी यह विराट और ओजस्वी उपस्थिति सदैव हमारा मार्ग आलोकित करती रहेगी और हमें प्रेरणा देती रहेगी। ॐ शांति।"

[२९] मोबाइल स्क्रीन पर अधूरा सपना

आज भी जब राणा साहेब के मोबाइल की स्क्रीन चालू होती है, तो २०२३ के विदाई समारोह की वह पुरानी सेल्फी हृदय में एक अनजान भारीपन भर देती है। वह तस्वीर केवल एक क्षण नहीं थी, बल्कि उनकी अपनी सेवानिवृत्ति (Retirement) के लिए एक मीठी आशा थी। पीछे 'विदाई समारोह' का वही पोस्टर और वही मंच... साहेब ने मन में अवश्य सोचा होगा कि, "अगले वर्ष इस स्थान पर मैं हूँगा।" उनकी मुस्कान में वर्षों की कठिन मेहनत के बाद मिलने वाले विश्राम की सहज कल्पना थी।

परंतु नियति के खाते में गणनाएँ कुछ और ही थीं। जिस मंच पर सम्मान स्वीकार करना था, वहाँ पहुँचने से पूर्व ही उन्होंने जीवन के रंगमंच से विदाई ले ली। सभागार वही रहा, पोस्टर भी वही रहा, बस राणा साहेब की कुर्सी सदा के लिए खाली रह गई।

रिटायरमेंट की राह तकते रहे, काल की गति समझ न आई,
एक पल में मंच सूना हो गया, किसी की आह समा न पाई।
सेल्फी में मुस्कान थी, पर विधाता ने बाज़ी पलट दी,
सभागार वही, पोस्टर वही, पर राणा साहेब की जगह खाली रह गई।

परिवार के लिए समर्पित जीवन

राणा साहेब का जीवन समर्पण की पराकाष्ठा था। वे इस संसार में आए ही केवल 'कमाने' के लिए थे—अपने लिए नहीं, बल्कि अपने परिवार के लिए। उन्होंने कंधों पर ज़िम्मेदारी का जो भारी बोझ उठाया था, उसकी पीड़ा कभी किसी के सामने प्रकट नहीं होने दी। हर बचत, हर निर्णय और हर संघर्ष के पीछे केवल एक ही लक्ष्य था: बच्चों का उज्ज्वल भविष्य। वे कभी अपने लिए जिए हों, ऐसा प्रतीत ही नहीं होता। सेवानिवृत्ति का अर्थ उनके लिए विश्राम नहीं, बल्कि पोते के साथ खेलने और पत्नी के साथ तीर्थयात्रा करने के कुछ सुहाने पल थे—जो सपना ही बनकर रह गए।

कंधों पर था परिवार का बोझ, पर वे कभी झुके नहीं,
संघर्ष की वह लंबी रात थी, पर वे कभी थके या हारे नहीं।
परिवार के लिए जो कमाया, उसमें अपना कुछ न देखा कभी,
यह जीवन केवल एक कर्तव्य था, जिसे उन्होंने शांति से पूरा कर दिया।

जीवन का यह अंतिम मोड़ बहुत कठिन निकला,

साथ छोड़ा आपने, और रास्ता मुझसे छूट गया।

जीवन के अंतिम पृष्ठ अत्यंत मूल्यवान होते हैं क्योंकि जीवन का वास्तविक मर्म उन्हीं में छिपा होता है। आपका साथ हमारे लिए अत्यंत आवश्यक था। आपकी कमी उन कठिन प्रश्नों के उत्तर खोजते समय सबसे अधिक खलती है। आप तो मेरी ज़िंदगी के सारथी थे... अब जब आप ही नहीं रहे,तो मैं किससे सही राह पूछूँगा? भावनाएँ कभी भुलाई नहीं जा सकतीं; प्रकृति का यही नियम मुझे आज भी जीवित रखे हुए है।

अंतिम प्रश्न: ऋण चुकाकर गए या चढ़ाकर?

यह प्रश्न हृदय को निरंतर मंथन में डुबो देता है:

ऋण चुकाया: एक पति, पिता और शिक्षक के रूप में उन्होंने अपने समस्त सांसारिक दायित्व पूरी निष्ठा के साथ निभाए और चुकाए। संतान को अपने पैरों पर खड़ा किया और समाज को ज्ञान का अनमोल उपहार दिया। शारीरिक रूप से वे समस्त बंधनों से मुक्त होकर देवलोक गमन कर चुके हैं।

ऋण चढ़ाया: परंतु वे परिवार पर अपने असीम प्रेम और वात्सल्यमयी छत्रछाया का एक ऐसा ऋण चढ़ाकर गए हैं, जिसे कभी चुकाया नहीं जा सकता। सेवानिवृत्ति के बाद जो आत्मीय संबल और स्नेह उन्हें देना था, उसकी कमी सदा के लिए रह गई। यह ऋण अब केवल अश्रुओं और उनकी सिखाई बातों के माध्यम से ही स्मृत किया जा सकता है।

> शीघ्र चले गए, शीघ्र मुक्ति पाई, रिटायरमेंट की राह न देखी,
> किस जन्म का ऋण चुकाया, और कौन सा संचय यहाँ रोप गए?
> राणा साहेब, आपकी आत्मा को चिर शांति मिले यही प्रार्थना है,
> संघर्ष के सच्चे साथी, आपको कोटि-कोटि वंदन!

"राणा साहेब, आपकी तपस्या पूर्ण हुई। आपने जो कुछ भी किया वह केवल कर्तव्य नहीं, बल्कि एक पवित्र महायज्ञ था।"

[३०] अधूरी विदाई: शून्यता का सम्मान समारोह

"जिस उँगली को पकड़कर मैंने दुनिया का पहला पाठ सीखा था,
आज उन्हीं उँगलियों के निशान मैं खाली कुर्सी पर खोज रहा था।"



ज़िंदगी में कुछ दिन ऐसे होते हैं जिनकी हम वर्षों से अत्यंत उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करते हैं, परंतु वही दिन जब सामने आता है तो पहाड़ जैसा भारी प्रतीत होता है। मेरे पिता, 'राणा साहेब' की सेवानिवृत्ति (Retirement) का वह दिन... जिस दिन संपूर्ण शेठ सी. जे. हाईस्कूल उनके सम्मान में सजाया गया था, जिस दिन हज़ारों विद्यार्थियों के गले रुँधे हुए थे और जिस दिन सहकर्मियों तथा मित्रों की आँखें नम थीं—उसी दिन जिस महान व्यक्तित्व के लिए यह सब आयोजन किया गया था, वे स्वयं वहाँ उपस्थित नहीं थे। किसी भी पुत्र या कर्मचारी के परिवार पर कभी ऐसा वज्रपात न हो कि उस व्यक्ति की अनुपस्थिति में उसकी विदाई का उत्सव मनाना पड़े।

मुझे आज भी वह दिन भली-भांति याद है, जब पापा मुझे पहली बार इसी विद्यालय में कक्षा-८ में अपने साथ लाए थे। उनका वह मज़बूत हाथ मेरे छोटे से हाथ में था और मुझे लगता था कि इस विशाल दुनिया में मुझे किसी से भी डरने की आवश्यकता नहीं है। उस दिन उन्होंने

मुझे विद्या के इस पवित्र धाम में बिठाया था। परंतु पापा! मुझे कहाँ ज्ञात था कि जिस विद्यालय में आप मुझे उँगली पकड़कर लाए थे, वहीं आपके विदाई समारोह में मुझे आपको केवल एक तस्वीर के रूप में लाकर रखना पड़ेगा? उस सभागार तक का मार्ग उस दिन मन-मन भारी लग रहा था। हृदय पर विशाल पत्थर रखकर मैं उस हॉल में बैठा था जहाँ आपका नाम बारंबार गूँज रहा था, परंतु सामने से प्रत्युत्तर देने के लिए आपकी वह सुपरिचित, ओजस्वी आवाज़ कहीं नहीं थी।



"नाम गूँज रहा था पूरे सभागार की चारों दीवारों में,
परंतु मेरा श्वास घुट रहा था आपकी कमी की ज्वालाओं में।"

लोग मंच पर आकर आपकी सत्यनिष्ठा और ईमानदारी के प्रसंग सुना रहे थे, आपके ३६ महीनों के बिना वेतन वाले कठिन संघर्ष की गाथाएँ बता रहे थे, परंतु मेरा मन तो यह सोचकर रो रहा था कि यह सम्मान पत्र, यह शाल और यह पुष्पगुच्छ अब किसके कंधों पर रखूँ? जिस हाथ ने जीवन भर चौक और डस्टर पकड़े, जिस हाथ ने हज़ारों बच्चों का स्वर्णिम भविष्य लिखा, वही हाथ आज सेवानिवृत्ति के काग़ज़ स्वीकार करने के लिए उपस्थित नहीं था। ईश्वर

ने आपकी सेवानिवृत्ति का आदेश विद्यालय के रजिस्टर से पूर्व ही जीवन के रजिस्टर में फाड़ दिया था। ५ नवंबर की उस भयावह रात को आप इस नश्वर संसार से सेवानिवृत्त हो गए।

जब आपकी उस खाली कुर्सी के समीप खड़े होकर मैंने लोगों की श्रद्धांजलियाँ स्वीकार कीं, तब मुझे वास्तविक अर्थों में समझ आया कि पिता क्या होता है। पिता यानी वह वटवृक्ष जिसकी अनुपस्थिति में भी उसका नाम आपको समाज में सर्वोच्च सम्मान दिलाता है। परंतु उस सम्मान का मूल्य कितना विशाल था! मुझे अपने पूज्य पिता को खोकर वह सम्मान स्वीकार करना पड़ा। उस सभागार में उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति की आँखों में जो अगाध करुणा थी, वह मुझसे बार-बार यही प्रश्न पूछ रही थी कि "रणविजय, तुम्हारे पिता कहाँ हैं?" और मेरे पास मौन के अतिरिक्त और कोई उत्तर नहीं था।



"जगत ने जिसे 'सेवानिवृत्ति' का नाम देकर हार पहनाए,
कुदरत ने उस बेटे के भाग्य में जन्मों-जन्म के अश्रू लिख दिए।"



पापा! आप जब अस्पताल के बिस्तर पर थे, तब भी यही पूछते थे कि "स्कूल जाना है, काम अधूरा है।" आपकी वही अद्वितीय कर्तव्यनिष्ठा आपकी वास्तविक पहचान थी। आप कैंसर जैसी भीषण बीमारी से भी एक वीर योद्धा की भाँति लड़े, परंतु नियति का चक्र ऐसा चला कि आप अस्पताल के बिछौने से सीधे ईश्वर के परम धाम पहुँच गए। आपकी यह 'अधूरी विदाई' आज भी मुझे हर कदम पर, हर क्षण याद आती है। संध्या ढलते ही जब मैं घर पर अकेला टहलता हूँ, तो मार्ग मुझसे पूछते हैं कि "आज साहेब आपके साथ क्यों नहीं हैं?"

जिन लोगों ने आपकी सहायता ली थी, जिन्हें आपने विपत्ति के समय उबारा था, वे लोग जब आज मेरे सम्मुख विवश होते हैं, तब आपकी कमी सबसे अधिक खलती है। यदि आप होते, तो किसी की मंशा नहीं थी कि मेरी ओर आँख उठाकर भी देख सके। पिता यानी वह अभेद्य ढाल जो स्वयं सारे प्रहार सह लेता है, परंतु अपनी संतान पर तनिक भी आँच नहीं आने देता। आज वह ढाल टूट चुकी है और मैं इस खुले आकाश के नीचे पूरी तरह अकेला खड़ा हूँ।

> "प्रथम दिवस आप मुझे कंधे पर बिठाकर स्कूल लाए थे,
> अंतिम दिवस आपकी स्मृतियों का भारी बोझ मुझे अकेले ही उठाना था।"



पापा! यह पुस्तक 'अधूरी विदाई' उसी सभागार की निशब्द शांति का स्थाई पता है। इसमें मेरा आक्रोष है, मेरी असीम वेदना है और आपके प्रति मेरी अनंत भक्ति है। भले ही आप विद्यालय से सेवानिवृत्त हो गए हों, परंतु मेरे हृदय के कक्षा-कक्ष में आप आज भी वही तेजस्वी 'राणा साहेब' बनकर ज्ञान का सिंचन कर रहे हैं। आपकी सिखाई नीतियाँ और संस्कार आज भी मुझे जीवन की हर कठिन परीक्षा में उत्तीर्ण कराते हैं।

आप देवलोक में जहाँ भी हों, बस इतना स्मरण रखिएगा कि आपका यह रणविजय आपके दिए उच्च संस्कारों को कभी धुंधला नहीं पड़ने देगा। इस 'अधूरी विदाई' को मैं एक दिन अपनी स्वर्णिम सफलता से 'पूर्ण' करूँगा।

[३१] त्याग की मूरत और स्मृतियों का अवकाश

"चेहरे पर मुस्कान रखकर पूरी दुनिया जीत ली पूज्य पिताजी,

पर घर की चौखट पर आकर आज दो देवतुल्य जीवों ने वेदना पी ली।"

ज़िंदगी के दर्पण में जब मैं भूतकाल की ओर दृष्टि डालता हूँ, तब मुझे दो ऐसे तपस्वी पात्र दिखाई देते हैं जिन्होंने संघर्ष को ही अपना परम धर्म बना लिया था। मेरे आदरणीय पिताजी—वे गौरवशाली 'राणा साहेब' और मेरी परम पूज्य माताजी। ये दोनों केवल व्यक्ति नहीं थे, बल्कि एक ही दिव्य आत्मा के दो अंश थे। पूज्य पिताजी जब 'हाईस्कूल' में पूर्ण निष्ठा और मर्यादा के साथ शिक्षण कार्य करते थे, तब माताजी घर पर रहकर उनके उच्च आदर्शों की रक्षा करती थीं। वे कठिन दिन भले ही यह दुनिया भूल जाए, परंतु हम संतान कभी नहीं भूल सकते। लगातार ३६ महीनों तक पूज्य पिताजी को वेतन नहीं मिला था; एक पवित्र शिक्षक के लिए इससे बड़ी परीक्षा और क्या हो सकती है? परंतु धन्य है पूज्य पिताजी की वह अडिग खुमारी और माताजी का अपार धैर्य!

घर में शायद अन्न कम पड़ा होगा, शायद कितनी ही रातें उन्होंने केवल जल पीकर भूखे पेट बिताई होंगी, परंतु इस बाहरी जगत को कभी इस बात का आभास तक नहीं होने दिया कि आज राणा साहेब के भव्य आँगन में चूल्हा नहीं जला है। माताजी ने कभी कोई शिकायत नहीं की; उन्होंने अपने आभूषण समर्पित कर दिए होंगे या अपनी मूलभूत आवश्यकताओं का त्याग किया होगा, परंतु पूज्य पिताजी की प्रतिष्ठा और गौरव पर कभी आँच नहीं आने दी। पूज्य पिताजी समाज के सामने लड़ रहे थे और माताजी घर की आंतरिक विषमताओं के सामने अचल बनकर खड़ी थीं।

"लोगों को लगा कि राणा साहेब तो राजाओं जैसा जीवन जीते हैं,

परंतु किसी को ज्ञात न था कि वे दोनों भीतर ही भीतर कितने आँसू पीते हैं।"

आज पूज्य पिताजी अपनी अर्धांगिनी को इस स्वार्थी दुनिया में पूरी तरह एकाकी छोड़कर परमधाम सिधार गए हैं। उनके जाने से मेरा तो संबल छीन गया है, परंतु माताजी का तो संपूर्ण ब्रह्मांड ही शून्य हो गया है। जिस देवतुल्य पुरुष के साथ उन्होंने आधी सदी बिताई, जिनके हर श्वास और आदतों का वे माँ की तरह ध्यान रखती थीं, वही जीवनसाथी आज उन्हें बीच भँवर

में छोड़कर चले गए हैं। माताजी आज भी पूज्य पिताजी के उस खाली आसन के पास घंटों बैठी रहती हैं; उनकी नम आँखें आज भी घर के मुख्य द्वार पर पूज्य पिताजी के आगमन की प्रतीक्षा करती हैं। पिताजी के बिना माता-जी आज जब दुनिया के बदलते ढोंग और व्यवहार को देखती हैं, तब उनका हृदय चीत्कार कर उठता होगा। जिन व्यक्तियों को पूज्य पिताजी ने उँगली पकड़कर सहारा दिया था, आज वही लोग माताजी की विवशता की उपेक्षा करते हैं, तब हृदय चीख-चीखकर कहता है, "पूज्य पिताजी, आप एक बार लौट आइए।"

परंतु इस वेदना की पराकाष्ठा तब आती है, जब मेरा पुत्र क्रीतार्थराजसिंह अपनी निश्छल आँखों से मुझसे प्रश्न करता है, "पापा, दादाजी कब वापस आएँगे?" रणविजय के रूप में मैं भले ही कितना भी सक्षम क्यों न हूँ, परंतु अपने पुत्र के इस एक प्रश्न के सम्मुख मैं पूरी तरह असहाय हो जाता हूँ। जिनके साथ वह पूरे गाँव में घूमता था, वे पूज्य दादाजी अब केवल एक स्मृति बन गए हैं—यह मैं उसे कैसे समझाऊँ? क्रीतार्थराजसिंह के ये मासूम प्रश्न मुझे भीतर तक झकझोर देते हैं। मैं अपने भीतर एक महाभारत लड़ रहा हूँ। एक ओर माताजी का असह्य मौन है,दूसरी ओर पुत्र की मासूम आशा है, और इन सब के बीच मैं पूरी तरह अकेला और अशांत खड़ा हूँ।

"जिस मन की व्यथा मैं पूज्य पिताजी से कह सकता था,
आज वही भारी बोझ हृदय में दबाकर अशांत जी रहा हूँ।"

पूज्य पिताजी, आप केवल मेरे जनक नहीं थे, आप मेरे श्रेष्ठ पथदर्शक और मित्र थे। जो उलझन मैं दुनिया से नहीं कह पाता था, वह आपके समक्ष निसंकोच उड़ेल देता था और आप एक मंद मुस्कान के साथ मेरा सारा तनाव हल्का कर देते थे। आज आपकी भौतिक उपस्थिति नहीं है, इसलिए मेरा वह अटूट विश्वास का कंधा भी खो गया है। मैं अत्यंत अशांत हो गया हूँ, कहीं भी मन को शांति नहीं मिलती। विद्यालय हो या घर, प्रत्येक स्थान पर आपकी अनुपस्थिति मुझे डंसती है। लोग कहते हैं कि समय के साथ यह घाव भर जाएगा, परंतु पूज्य पिताजी, उन्हें कौन समझाए कि आपकी कमी को पूरा कर सके, ऐसी कोई औषधि ईश्वर ने बनाई ही नहीं है।

संध्या ढलते ही जब मैं निवास स्थान पर लौटता हूँ, तब आपका वह खाली आसन देखकर मेरा कलेजा काँप उठता है। माताजी का पत्थर जैसा मौन और क्रीतार्थराजसिंह के हृदयविदारक प्रश्न—ये दृश्य मुझे निरंतर यह अहसास कराते हैं कि पूज्य पिताजी केवल एक व्यक्ति नहीं थे, बल्कि पूरे परिवार के प्राणवायु थे।

"पिता के बिना घर यानी बिना छत की दीवारें,
अब तो बस प्रज्वलित हैं स्मृतियों के अमर दीये।"

आदरणीय पिताजी, आप जहाँ भी दिव्य रूप में विराजमान हों, बस देखते रहिएगा कि आपकी अर्धांगिनी कभी असहाय नहीं है। आपका रणविजय भले ही भीतर से क्षत-विक्षत हो, परंतु आपके दिए संस्कारों के बल पर वह आज भी अडिग हिमालय की भाँति खड़ा है। भूखे रहकर भी आपने जिस पवित्र साख और प्रतिष्ठा का जतन किया है, उसी गौरव को मैं आजीवन अपने शीश पर धारण करूँगा। आपकी इस 'अधूरी विदाई' को मैं शब्दों में पिरो रहा हूँ, ताकि आने वाली पीढ़ियों को ज्ञात हो सके कि एक आदर्श पिता और एक महान माता ने किस प्रकार शून्य से सृष्टि का सृजन किया था।

[३२] पिता: एक अभेद्य कवच और दुनिया के बदलते रंग

"पिता थे जब तक, हर कोई झुकता था पापा,
आपके होने से ही यह जग भाता था पापा;
आप गए और रंग बदल गए सारे रिश्तों के,
वरना आपकी छत्रछाया में तो नसीब भी खेलता था पापा।"

इस पुस्तक के २९ अध्यायों में मैंने पूज्य पिताजी 'राणा साहेब' के अनवरत संघर्ष, उनके उच्च आदर्शों और उनकी निष्कलंक नैतिकता की गाथाएँ लिखीं। परंतु यह अंतिम अध्याय मेरे हृदय की वह भीषण चीख है जो आपके जाने के बाद इस दुनिया के बदलते हुए चेहरों को देखकर निकली है। पिता जब तक जीवित रहते हैं, तब तक वे अपनी संतान के लिए केवल एक व्यक्ति नहीं होते, बल्कि एक ऐसा 'अभेद्य किला' होते हैं जिसकी दीवारें इतनी ऊँची होती हैं कि दुनिया की कोई भी आपदा या किसी की कुदृष्टि संतान तक पहुँच ही नहीं सकती। परंतु जिस दिन वह किला ढहता है, उस दिन समझ आता है कि बाहर खड़े गीदड़ कितने हिंसक और खूँखार थे।

पिता की छत्रछाया: एक अदृश्य रक्षण

पापा! आपके जाने के बाद जो प्रथम सत्य मुझे समझ आया, वह यह है— "बेटा चाहे कितना भी बड़ा, समर्थ और सक्षम क्यों न हो जाए, परंतु पिता के होने से जो आत्मिक साहस मिलता है, वह दुनिया की कोई धन-संपदा नहीं दे सकती।" जब आप थे, तब मुझे कभी यह चिंता नहीं होती थी कि समाज क्या कहेगा या दुनिया क्या कहेगी। मुझे भली-भांति ज्ञात था कि यदि मैं कहीं अटकूँगा, तो पीछे एक ऐसा बब्बर शेर खड़ा है जिसकी केवल परछाई ही विरोधियों के हृदय में भय उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त है।

आप तो एक सच्चे 'राजा इंसान' थे। अपनी मध्यमवर्गीय सीमाओं के भीतर रहते हुए भी आपने कभी हमें यह आभास नहीं होने दिया कि हमारे पास किसी वस्तु की कमी है। परंतु पापा, आपके जाने के बाद ज्ञात हुआ कि हमारे जीवन में 'मनुष्यता' और 'सुरक्षा कवच' की

कितनी बड़ी अपूरणीय क्षति हुई है। आपके देवलोकगमन के पश्चात मैंने उन सभी व्यक्तियों के वास्तविक रंग देखे, जो आपके जीवित रहते कभी दिखाई नहीं दिए थे।

रक्त के संबंध और बदलते मुखौटे

"जिसकी उँगली पकड़कर आपने दुनिया देखी थी पापा,
उन्हीं लोगों ने आज आपके बेटे का एकाकीपन देख लिया;
मीठी वाणी के पीछे जो ज़हर छिपा था वर्षों से,
आपके जाते ही उन लोगों ने अपनी असलियत दिखा दी।"

पापा! आपके जाने से केवल एक भौतिक शरीर नहीं गया, बल्कि मेरे जीवन से वह 'सर्वोच्च न्यायाधीश' चला गया जो सदैव सत्य के पक्ष में निष्पक्ष खड़ा रहता था। आपके जाने के बाद मैंने देखा कि कैसे अपने ही रिश्तेदारों की दृष्टि और नीयत बदल जाती है। जो लोग आपके समय में अत्यंत अदब से खड़े रहते थे, जो आपकी अनुमति और सलाह के बिना एक कदम भी आगे नहीं बढ़ाते थे, आज उन्हीं लोगों ने आपके बेटे को उपदेश देना प्रारंभ कर दिया है—उपदेश नहीं, बल्कि अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने का कुत्सित प्रयास!

मैंने देखा कि जिनके लिए आपने अपनी स्वयं की आवश्यकताएँ तक त्याग दी थीं, जिन्हें आपने विपत्ति के समय कंधों पर बिठाया था, वे लोग आज ऐसा व्यवहार कर रहे हैं मानो हमारा संबंध केवल आपके अस्तित्व तक ही सीमित था। पिता के बिना पुत्र जब अकेला पड़ता है, तब यह निष्ठुर दुनिया उसे सांत्वना देने के बजाय उसकी विवशता का उपहास उड़ाने में अधिक रुचि लेती है। मैंने उन लोगों के घिनौने रंग देखे जिन्हें आपने 'अपना' माना था, परंतु आपके जाते ही वे हमारे लिए 'पराए' हो गए।

रात १:१० बजे की वह घबराहट और मेरा एकाकीपन

जब आप अस्पताल के बिस्तर पर थे, जब आपको तीव्र घबराहट होती थी, तब मैं आपके सम्मुख एक पर्वत की भाँति सुदृढ़ बनकर खड़ा रहता था। परंतु पापा! आज जब मुझे वैसी ही घबराहट और बेचैनी होती है, तब मैं किसकी ओर देखूँ? आप तो सदैव कहते थे ना— "मेरा बेटा तो लाखों में एक है।" आपके वे अमर शब्द आज भी मेरे कानों में निरंतर गूँजते हैं, परंतु वह वात्सल्यमयी संबल देने वाला हाथ अब ओझल हो चुका है।

आपके जाने के बाद दुनिया के रंग इसलिए बदल गए क्योंकि वे जान गए कि अब इस बेटे के पीछे 'प्रतापसिंह' नाम की वह अचल और अभेद्य दीवार नहीं है। लोगों ने मुझे तोड़ने का

प्रयास किया, मुझे नीचा दिखाने की चेष्टा की। परंतु उन मूर्खों को क्या पता कि भले ही पिता का भौतिक हाथ सिर पर न हो, परंतु पिता का वही ओजस्वी रक्त आज भी मेरी रगों में प्रवाहित हो रहा है!

"भले ही आप नहीं हैं पापा, पर आपकी सीख मेरे साथ है,
आपके दिए संस्कारों की वह अटूट निधि मेरे साथ है;
दुनिया भले ही कितने रंग बदले आज,
रण में लड़ने की वह क्षात्रधर्म की नीति मेरे साथ है।"

अगले जन्म की आस और अधूरी अभिलाषाएँ

पापा! मुझे आपसे बहुत कुछ कहना था। मैं आपको वह स्वर्णिम दिन दिखाना चाहता था जब मैं आपकी सेवानिवृत्ति का एक भव्य समारोह आयोजित करता और संपूर्ण ग्राम स्तब्ध होकर देखता रह जाता। मैं आपको वह संपूर्ण सुख देना चाहता था जो आपने हमें पालने-पोसने में स्वयं त्याग दिया था। मैं आपके थके हुए चरणों को दबाकर कहना चाहता था— "पापा! अब आप विश्राम कीजिए, आपका बेटा अब सब कुछ संभालने में पूर्णतः समर्थ है।"

परंतु नियति कितनी निष्ठुर निकली! जिस क्षण मैं समर्थ बना, उसी क्षण कुदरत ने आपको मुझसे छीन लिया। इस 'अधूरी विदाई' का शूल मेरे हृदय में आजीवन चुभता रहेगा। इस पुस्तक के ५००० शब्द या लाखों पृष्ठ भी मेरी इस अगाध वेदना को समेटने के लिए अत्यंत छोटे पड़ जाएँगे।

मैंने इस पुस्तक के पृष्ठों पर हमारी इस अमर गाथा को सदा-सदा के लिए उकेर दिया है। ये केवल कागज़ के पन्ने नहीं हैं, यह एक समर्पित पुत्र की आत्मा का पावन अर्पण है। आने वाली पीढ़ियाँ जब इसे पढ़ेंगी, तब उन्हें ज्ञात होगा कि २१वीं सदी में भी एक ऐसा प्रतापी पिता था जिसने अपनी संतान के सुख और उज्ज्वल भविष्य के लिए अपनी जिह्वा, अपना व्यक्तिगत सुख और अपना संपूर्ण अस्तित्व होम कर दिया था।

अंतिम संकल्प: आपके विराट व्यक्तित्व का उत्तराधिकार

पापा! अंत में मैं बस इतना ही कहूँगा कि भले ही दुनिया ने मुझे अपने घिनौने रंग दिखाए, भले ही लोगों ने मुझे एकाकी करने का षड्यंत्र रचा, परंतु मैं कभी पराजित नहीं होऊँगा। क्योंकि मैं 'राणा साहेब' का पुत्र हूँ! आपका वह रोबीला व्यक्तित्व, आपकी वह सत्यनिष्ठा और आपकी वह सादगी अब मेरे भीतर सदा जीवंत रहेगी।

अगले जन्म में यदि ईश्वर मुझसे पूछे कि 'तुझे क्या बनना है?', तो मैं केवल एक ही वरदान माँगूँगा— यह **'અધૂરી વિદાય''अधूरी विदाई'**शीर्षक भले ही मेरे शब्दों का भार सहन कर ले, परंतु यह अधूरी विदाई मेरी आँखों से बहते अश्रुओं का भार कभी सहन नहीं कर सकती। "मुझे पुनः प्रतापसिंह चौहान का ही पुत्र बनाकर इस धरा पर भेजना।" क्योंकि आपके जैसा विराट व्यक्तित्व, आपका जैसा असीम वात्सल्य और आपकी जैसी दिव्य छत्रछाया मुझे इन सात जन्मों में कहीं प्राप्त नहीं हो सकती।

आपकी कमी मुझे हर कदम पर, हर क्षण खलती है। जब भी घर से बाहर निकलता हूँ, तो उस पुरानी तस्वीर में आपकी आँखें मानो मुझसे कहती हैं— "बेटा, संभालकर जाना।" और बस, उसी एक क्षण में मुझे इस संपूर्ण संसार से टकरा जाने की अपार शक्ति मिल जाती है।

Miss you so much, Papa...आपके बिना यह घर, यह गाँव और यह संपूर्ण जीवन अत्यंत सूना और निरर्थक है। परंतु आपके दिए हुए संस्कारों के इस अमर दीपक को मैं कभी बुझने नहीं दूँगा। आप जहाँ भी देवलोक में होंगे, वहाँ से देखिएगा—आपका बेटा आपके नाम पर कभी तनिक भी आँच नहीं आने देगा।

"जी गए आप राजा की भाँति, और राजा जैसी विदाई ली,
हमारे सुख के लिए पापा, आपने पूरी ज़िंदगी न्योछावर कर दी;
यह पुस्तक साक्षी है आपकी महानता की इस धरा पर,
आप तो जाकर ईश्वर के दरबार में भी अपना स्थान बना गए।"

"आपकी पावन स्मृतियों में लीन, आपका ही गौरवान्वित पुत्र,

रणविजयसिंह प्रतापसिंह चौहान"

[३३] अंतिम मनका: विदाई अधूरी, पर विरासत अखंड

"कलम थक चुकी है लिखते-लिखते, पर वेदना आज भी उतनी ही ताज़ा है,

पापा, आपकी अनुपस्थिति में यह पूरी दुनिया कितनी बेगानी और निष्ठुर है।"

इस पुस्तक के अंतिम पृष्ठ तक पहुँचते-पूँछते मेरा हृदय पूरी तरह भर आया है। 'अधूरी विदाई' लिखते समय मैंने केवल शब्दों को नहीं लिखा बल्कि अपने हृदय की हर धड़कन और पूज्य पिताजी के साथ बिताए उस हर क्षण को पुनः जिया है। लोह पुरुष जैसे मेरे पिता 'राणा साहेब' और त्याग की साक्षात मूरत मेरी माता-जी—इन दोनों ने जिस प्रकार शून्य से सृष्टि का सृजन किया था, उसका आभार व्यक्त करने के लिए मेरा संपूर्ण जीवन भी कम पड़ेगा।

मेरा संकल्प:

पापा! आप भले ही ५ नवंबर की उस भयावह रात को हमें बीच भँवर में छोड़कर चले गए, परंतु आपके दिए संस्कारों का सूर्य कभी अस्त नहीं होगा। आज जब मैं 'शेठ सी. जे. हाईस्कूल' की चौखट पर खड़ा होता हूँ, तो मुझे आपकी ही ओजस्वी वाणी का प्रतिध्वनन सुनाई देता है। जिस निष्ठा और ईमानदारी से आपने ३६ महीनों तक बिना वेतन के शिक्षण कार्य किया था, वही सत्यनिष्ठा मेरे जीवन का मूलमंत्र रहेगी।

दुनिया के लिए संदेश:

इस पुस्तक को पढ़ने वाली प्रत्येक संतान से मैं बस इतना ही कहना चाहता हूँ कि—पिता के जीवित रहते ही उनके श्रीचरणों में अपने स्वर्ग को खोज लेना। पिता तो वह वटवृक्ष की छत है, जिसके हटने के बाद ही ज्ञात होता है कि धूप की तपन कितनी निष्ठुर और तीव्र होती है। पिता के चले जाने के बाद यह दुनिया अपने वास्तविक रंग दिखाएगी; जिन लोगों की आपके पिता ने निस्वार्थ सहायता की थी, वही लोग आज आपको विवश करेंगे, परंतु सदैव स्मरण रखना कि यदि आपके भीतर पिता के संस्कार जीवित हैं, तो आप अकेले दम पर इस संपूर्ण संसार से लड़ने में समर्थ हैं।

क्रीतार्थराजसिंह के लिए:

बेटा क्रीतार्थ! आज तुम मासूमियत से पूछते हो कि "दादाजी कब आएँगे?", परंतु जब तुम बड़े होकर इस पुस्तक को पढ़ोगे, तब तुम्हें अत्यंत गर्व का अनुभव होगा कि तुम्हारे दादाजी एक ऐसे महान योद्धा थे जिन्होंने कैंसर जैसी भीषण व्याधि के सामने भी कभी पराजय स्वीकार नहीं की और एक मंद मुस्कान के साथ इस संसार से विदा ली। तुम उन्हीं का पवित्र अंश हो, और तुम्हारी निश्छल आँखों में मैं उन्हें सदा जीवंत देखूँगा।

अंत में बस इतना ही...

पूज्य पिताजी! आपकी यह विदाई भले ही 'अधूरी' रह गई हो, परंतु आपका यह रणविजय आपकी कीर्ति और यश को कभी धुंधला नहीं पड़ने देगा। आप देवलोक में जहाँ कहीं भी विराजमान हों, बस अपना आशीर्वाद बनाए रखिएगा ताकि मैं आजीवन 'राणा साहेब का पुत्र' होने का गौरव अक्षुण्ण रख सकूँ।

"शरीर भले ही पंचतत्वों में विलीन हो गया हो पापा,

परंतु आपके विचार इस 'अधूरी विदाई' में सदा-सदा के लिए अमर रहेंगे।"

लिखित,
आप ही का अंश,
रणविजयसिंह प्रतापसिंह चौहान
(राधीवाड़)

स्नेहांजलि: एक अजातशत्रु मित्र की याद में...

"मित्रता का वो कैसा ऋणानुबंध होगा,
कि आँखें आपकी बंद होंगी और रोना हमारा होगा!
अब भी कानों में गूँजती है वो आखिरी आवाज़ आपकी,
कि 'बका का ध्यान रखना', यही अब आदेश हमारा है।"

कलम उठती नहीं, क्योंकि नमी केवल आँखों में नहीं, हृदय में है।

मेरे जीवन में जो कुछ ही सच्चे हितैषी आए, उनमें अग्रणी नाम यानी प्रतापसिंह। एक ऐसा व्यक्तित्व जिन्हें सही अर्थों में 'अजातशत्रु' कहा जा सकता है। कलयुग के इस दौर में इतना भोला स्वभाव और काँच जैसा साफ़ दिल मिलना असंभव है। उनकी दूरदृष्टि ऐसी थी कि छह महीने पहले ही स्टाफ़रूम में मेरा नाम प्रधानाचार्य के रूप में रख दिया था। उनकी इच्छा थी कि मैं वडाली में प्रिंसिपाल बनूँ, और आज उस पद पर बैठते हुए उनकी अनुपस्थिति बहुत खलती है। जब उन्हें कैंसर के रेडिएशन (Radiation) चल रहे थे, उस असह्य पीड़ा में भी वे अपनी तकलीफ़ भूलकर मेरी बहन नीलम के शोक-संवेदना (लोकाई) में आए थे। ऐसी हमारी अटूट दोस्ती थी! रणविजय, मेरी कोई बात उन्होंने कभी टाली नहीं।

जब मैंने वडाली छोड़ा, तब प्रतापसिंह बच्चे की तरह रोए थे। पंड्या साहब और उन्होंने मुझे रोकने की बहुत कोशिश की थी। आज समझ आता है कि वे आँसू केवल बिछड़ने के नहीं थे, वे शायद आने वाले वियोग की आहट थे। अंबाजी जाने का मन होता, तब राधिवाड़ स्टैंड पर उतरकर बापू से मिले बिना आगे बढ़ना मेरे लिए असंभव था।

"मुँह में छाले थे, पीड़ा की पराकाष्ठा थी,
फिर भी होठों पर मुस्कान और मित्र के लिए अटूट श्रद्धा थी।
मैंने कहा 'चलिए महेशभाई को दिखाते हैं', तब माने थे,
पर अफ़सोस! कुदरत के खेल हम कहाँ जानते थे?"

आदर्श शिक्षक और विषय-विशेषज्ञ:

गुजराती विषय के वे विशेषज्ञ थे, लेकिन भूगोल और समाजशास्त्र का उनका ज्ञान भी अद्भुत था। विद्यालय में कभी देर से न आना उनका नियम था। यात्राओं (प्रवास) में वे बच्चों को जो आनंद कराते थे और उन्हें मिले पुरस्कार ही उनकी श्रेष्ठता का प्रमाण हैं।

मेरे 'बका' के लिए एक वचन:

अंत में जब पिताजी ने कहा कि, "मेरे बका का ध्यान रखना", तब उन शब्दों में पिता का प्रेम और मित्र का विश्वास दोनों था। बेटा रणविजय, तू कभी भी किसी मोड़ पर अटके, तब अपने इस 'बी.आर. चाचा' को ज़रूर याद करना। मुझे गर्व है कि तूने अपने पिता का नाम रोशन किया है।

हे कुदरत! तेरे खजाने में क्या कमी आ गई थी कि तूने मेरे जिगरी दोस्त को इतनी जल्दी विदा कर दिया? परम कृपालु परमात्मा उनकी आत्मा को मोक्ष प्रदान करे और उनके उत्कृष्ट विचार हमारे बीच सदा जीवित रहें।

– प्रिंसिपाल बाबूभाई आर. चौधरी साहब

श्रद्धांजली: सत्य के साधक और मेरे परम हमदर्द को...

"झूठ के इस संसार में जिसने सत्य का मार्ग चुना था,

मक्खन लगाए बिना, जिसने संबंधों को असली रखा था।

आज भले ही खाली लगती है वो ज्ञान की पीठ और स्कूल का आँगन,

पर आपके शब्दों ने ही तो सींचा है हमारा यह जीवन पूरा का पूरा विशाल!"

कलम आज भारी है, क्योंकि आज बात एक ऐसे व्यक्तित्व की है जिसने कभी शब्दों को सजाया नहीं, बल्कि हमेशा सच ही उकेरा है।

मेरे परम हितैषी और निकटतम हमदर्द यानी प्रतापसिंह। एक ऐसा इंसान, जिनसे बात करने से पहले कभी सोचना नहीं पड़ता था। आज के ज़माने में जब किसी के सामने दिल खोलने से पहले सौ बार सोचना पड़ता है, तब प्रतापसिंह एक ऐसी खुली किताब थे जिनके चेहरे पर भी वही होता था जो उनके मन में होता था। किसी को 'मक्खन लगाना' या झूठी प्रशंसा करना उनके स्वभाव में था ही नहीं। वे हमेशा अपने जीवन के सच्चे अनुभवों का वर्णन करते थे और उन्हीं अनुभवों से हमें सीखने को मिलता था।

परमतत्व के सच्चे पुजारी:

ऐसे इंसान इस दुनिया में दुर्लभ हैं। वे केवल एक शिक्षक या मित्र नहीं थे, बल्कि परमतत्व को पाने वाले एक सच्चे साधक थे। शायद इसीलिए कुदरत भी ऐसे ही लोगों की कठिन 'अग्निपरीक्षा' लेती है। उनकी ईमानदारी और स्पष्टवादिता के कारण ही आज भी उनका स्थान कोई नहीं ले सकता।

एक ऐसा खालीपन, जो कभी भरेगा नहीं:

रणविजय, तेरे पिता केवल तेरे पिता नहीं थे, मेरे लिए एक ऐसे 'परम भाई' थे जिनके कंधे पर मैं अपना दुख हल्का कर सकता था। आज जब पीछे मुड़कर देखता हूँ तो समझ आता है कि अब मेरा दुख सुनने वाला कोई नहीं रहा। वे मुझे और मेरी वेदना को जिस तरह समझते थे, वो समझ अब कहीं ढूँढने पर भी नहीं मिलेगी।

"मनुष्य मिलते हैं लाखों, पर मन का मीत मिलना मुश्किल है,

सच बोलने वालों के लिए इस जग में, अग्निपरीक्षा देना भी मुश्किल है।

आप तो पा गए उस परमधाम को, पर यहाँ हमें राज़दार के बिना छोड़ गए,

जीवन के उन असली अनुभवों की पूँजी, आप हमें विरासत में दे गए।"

मेरे उस परम मित्र और भाई की आत्मा को परमात्मा परम शांति प्रदान करे, यही मेरी अंतिम अभिलाषा है। उनके आदर्श तेरे जीवन में उतरें और तू उनकी कीर्ति को और उज्ज्वल करे, यही मेरी शुभकामनाएँ हैं।

मेरे जिगरी दोस्त प्रतापसिंह को शत-शत कोटि वंदन!

– महेंद्रभाई पंड्या (सुपरवाइज़र)
शेठ सी. जे. हाईस्कूल – वडाली

स्मृति -वंदना: परायों को अपना बनाने वाली सहृदयता की याद में...

"चेहरे पर वही मुस्कान और मन में सहृदयता थी,
परायों को भी अपना बनाने की उनमें कला थी।
परिस्थिति चाहे जैसी हो, वे कभी डगमगाए नहीं,
धैर्य के उस पहाड़ के आगे, मुसीबतों की क्या बिसात थी!"

कलम आज ऐसे व्यक्तित्व को नमन करती है, जिनके लिए संबंध ही असली पूँजी थे।

स्व. प्रतापसिंह किशोरसिंह साहब के साथ के मेरे संबंधों के आधार पर यदि मैं उनके व्यक्तित्व का वर्णन करूँ, तो वे स्वभाव से अत्यंत निश्छल, मिलनसार और सदा हंसमुख थे। सबको साथ लेकर चलने की उनकी अनूठी शैली हमें आज भी उतनी ही याद आती है। साहब का स्वभाव इतना शांत और प्यारा था कि अनजान व्यक्ति को भी वे क्षणभर में 'अपने' लगने लगते थे। किसी को भी अपना बना लेने की उनकी अद्भुत कुशलता के कारण, उनसे एक बार मिलने वाला व्यक्ति भी उन्हें सदा के लिए याद रख लेता था।

परिस्थितियों के सामने अडिग पुरुषार्थ:

प्रतापसिंह हर प्रकार की परिस्थिति से गुज़रे थे। जीवन में भले ही कैसे भी उतार-चढ़ाव आए हों, लेकिन हर परिस्थिति का बहुत ही गंभीरता और समझदारी से सामना करने की उनमें एक अनूठी क्षमता थी। वे कभी मुश्किलों से हारे नहीं, बल्कि मुस्कान के साथ उनका सामना किया।

"मिलते हैं इंसान हज़ारों, पर कोई छाप छोड़ जाता है,

आप जैसी हस्ती ही तो, दिल में याद छोड़ जाती है।

आज भले ही आप नहीं हैं, पर आपकी वो छवि नज़र के सामने है,

संस्कारों की उस विरासत की महक, आज भी चारों ओर फैली है।"

आज भी उनकी वो प्रभावशाली छवि मेरी नज़र के सामने तैरती है। रणविजय, तेरे पिता की यह सौम्यता और धैर्य ही तेरे जीवन का सबसे बड़ा आशीर्वाद है। परमात्मा उनकी पवित्र आत्मा को परम शांति प्रदान करे, यही प्रार्थना है।

शत-शत नमन!

– राजेंद्रसिंह अमरसिंह चौहान(सुपरवाइज़र)
श्री शेठ के. टी. हाईस्कूल, खेडब्रह्मा

स्मृति-वंदना:राधिवाड़ की धरती पर मित्रता की वो मीठी महक...

"गुजराती के शब्दों में जिसने स्नेह का सुर पिरोया था,

अंबाजी के पदयात्री को जिसने प्रेम से विश्राम कराया था।

राधिवाड़ से दो किलोमीटर दूर से ही वो हर्ष जाग उठता है,

दोस्त, तेरी गैरमौजूदगी में आज वो रास्ता भी बड़ा सूना लगता है!"

कलम आज एक ऐसे पवित्र संबंध को अर्घ्य देती है, जिसमें ज्ञान और आत्मीयता का संगम था।

परम आदरणीय प्रतापसिंह साहब यानी एक निर्दोष और शांत व्यक्तित्व के धनी। गुजराती विषय के प्रति हमारे समान अनुराग ने हमें केवल साथी-शिक्षक ही नहीं, बल्कि परम मित्र बना दिया था। मेरी हमेशा नया सीखने और जानने की तड़प को उन्होंने हमेशा पूरा किया। कुदरत का कैसा संजोग कि वडाली की धरती पर हम फिर से इकट्ठा हुए और वो मित्रता और गहरी हो गई।

आदरभाव और आत्मीयता का संगम:

जब भी मैं अंबाजी की पदयात्रा में जाता, तब बापू साहब के यहाँ थोड़ा विश्राम करने ज़रूर रुकता था। उस दंपति (पिताजी और माताजी) का जो आदरभाव और प्रेम था, वह आज भी मेरी आँखें नम कर देता है। आज भी जब मैं राधिवाड़ से दो किलोमीटर दूर होता हूँ, तब से ही प्रतापसिंह के साथ बिताए वे सुनहरे दिन और उनकी मित्रता के स्मरण हृदय में ताज़ा हो जाते हैं।

"कोमल हृदय का वो मित्र, अनहोनी विदाई दे गया,

जीवन के सफर में हमें बिल्कुल अकेला कर गया।

कमी तो ऐसी हुई है जो कभी पूरी नहीं होगी,

पर आपकी यादों की उँगली पकड़कर ही तो ज़िंदगी जी जाएगी!"

असह्य विदाई और स्थायी स्मरण:

एक कोमल हृदय वाले मित्र की यह अकल्पनीय विदाई वास्तव में असह्य है। जीवन में एक सच्चा मित्र खोने का अनुभव कितना दुखद होता है, यह आज मैं महसूस कर रहा हूँ। रणविजय, तेरे पिता की वो सौम्यता और ज्ञान की विरासत सदा हमारे साथ रहेगी। परम कृपालु परमात्मा उनकी पवित्र आत्मा को मोक्ष प्रदान करे, यही प्रार्थना है।

मित्रता की यादों को शत-शत नमन!

– अनिलभाई मकवाणा
प्रिंसिपाल, द न्यू हाईस्कूल – ईडर

स्मृति-अंजलि: मित्रता कभी मरती नहीं...

"पुस्तक के पन्ने तो पलट गए, पर सुगंध अभी बाकी है,

आप भले ही चले गए दूर, पर हृदय में आपकी यादें काफी हैं।

संबंधों को जिसने स्नेह से सींचा, वो माली भले आज नहीं है,

पर उनके स्वभाव की वो मिठास, हमारे मन को भिगोने के लिए काफी है।"

कलम आज मौन तोड़ने की कोशिश कर रही है, क्योंकि बात एक ऐसे जिगरी यार की है जो देह से दूर है, पर दिल के आज भी पास है।

स्वर्गीय प्रतापसिंह चौहान मेरे लिए केवल एक मित्र नहीं थे, बल्कि जीवन के कठिन सफर में सुख-दुख के सच्चे सहयात्री थे। उनके साथ बिताया हर पल आज भी मेरे हृदय के एक खास कोने में जीवित है। उनकी निष्कपटता, निर्दोष मुस्कान और सबको एक साथ जोड़कर रखने की जो अनूठी कला थी, वह कलयुग में मिलनी मुश्किल है।

आत्मीयता का अविभाज्य हिस्सा:

वे केवल एक परिचित व्यक्ति नहीं थे, बल्कि मेरी भावनाओं का एक अंश थे। उनका मीठा स्वभाव और सौजन्यपूर्ण व्यवहार आज भी सबके हृदय में अंकित है। जिस तरह उन्होंने हर संबंध को स्नेह से सींचा था, वह आज भी हमारे लिए एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

"शरीर से दूर जाने वाले लोग, यादों से कभी दूर नहीं होते,

भावनाओं के संबंध कभी समय के बहाव में चूर नहीं होते।

आप तो महक छोड़ गए हैं अपने संस्कारों की इस धरा पर,

इसीलिए तो आपके स्मरण कभी मन से दूर नहीं होते।"

संवेदनशीलता की विरासत:

उनकी कमी इस जीवन में कभी पूरी नहीं होगी, लेकिन उनकी यादें हमें हमेशा अधिक संवेदनशील और मानवीय बनना सिखाती रहेंगी। उनकी सहयोग की भावना और निस्वार्थ

प्रेम ही हमारी सच्ची पूँजी है। रणविजय, तेरे पिता ने मित्रता की जो परिभाषा सिखाई है, वह सदा हमारे मन को नम रखेगी।

मेरे जिगरी दोस्त प्रतापसिंह की पवित्र आत्मा को कोटि-कोटि वंदन!

– अनिलभाई सुथार
शेठ सी. जे. हाईस्कूल – वडाली

पितृ-प्रेम का पवित्र प्रतिबिंब: 'रणो' सेट हुआ और बापू हर्षित हुए!

"पिता की चिंता में छिपा हुआ संतान का पूरा आसमान होता है,

हर प्रार्थना में बस 'बेटे' के सुख का ही प्रकाश होता है।

साथ कदम बढ़ाए और साथ ही नौकरी के द्वार खुले,

वो दृश्य देखकर तो खुद कुदरत के आशीर्वाद भी अमूल्य हुए!"

कलम आज ऐसे पिता को अर्घ्य देती है, जिनके साँसों में केवल बेटे का भविष्य धड़कता था।

परम आदरणीय प्रतापसिंह साहब यानी मेरे बुजुर्ग और रणविजय, तेरे लिए तो साक्षात भगवान। उनके साथ जब भी बैठता, तब उनकी बातों में एक ही सुर सुनाई देता - 'मेरा रणो (रणविजय) कहीं सेट हो जाए तो अच्छा।' वे कहते कि रणो मेहनत तो बहुत करता है, लेकिन कहीं थोड़े के लिए रह जाता है। तब मैं उन्हें हमेशा एक ही सांत्वना देता कि, "आप देखिएगा, एक दिन आप दोनों साथ में ही नौकरी पर जाएँगे!"

भविष्यवाणी और भाग्य का संगम:

कुदरत का खेल तो देखिए! जब तेरा ऑर्डर आया और आप दोनों साथ मिले, तब बापू की आँखों में जो संतोष और हर्ष था, वह मैंने अपनी आँखों से देखा है। मेरी कही हुई बात सच साबित हुई और आप दोनों साथ में नौकरी पर गए - वह क्षण पिताजी के जीवन की सबसे बड़ी जीत थी। बेटे को सही जगह सेट देखना ही एक पिता का अंतिम लक्ष्य होता है, और बापू उस लक्ष्य को पूरा करके गए।

"बेटे की दुनिया पापा में और पापा की ज़िंदगी बेटे में थी,

एक अनूठी प्रीत इस पिता-पुत्र के अस्तित्व में बुनी हुई थी।

खुश देखना था पापा को और पापा को रणो को जीतते देखना था,

अंततः वे जीत गए, क्योंकि बेटे को सफल देखना ही उनका इरादा था।"

भावनाओं का अविरल प्रवाह:

मैंने तुम दोनों में पिता-पुत्र का जो अद्भुत प्रेम, सम्मान और लगाव देखा है, वैसा शायद ही कहीं देखने को मिले। पिताजी तुझे अविरल खुशियाँ देकर गए हैं। उनकी अंतिम इच्छा तुझे नौकरी करते हुए देखने की थी, जो ईश्वर ने पूरी की। शायद अब वे ऊपर बैठकर भी तुझे हँसते हुए देखकर बहुत खुश हो रहे होंगे। ज़रूरत तो वास्तव में उनकी थी, लेकिन कुदरत के नियम के आगे हम सब लाचार हैं।

रणविजय, तेरे पिता का यह साया और उनके आशीर्वाद हमेशा तेरे साथ रहेंगे। परमात्मा उनकी पवित्र आत्मा को चिर शांति प्रदान करे।

एक आदर्श पिता की स्मृतियों को कोटि-कोटि वंदन!

– राजेंद्रसिंह महोब्बतसिंह रहेवर
प्रिंसिपाल, शेठ वी. सी. मेहता हाईस्कूल – देरोल

शब्दांजलि: वडाली के विद्याधाम का एक अमर सितारा...

(शेठ सी. जे. हाईस्कूल, वडाली के समस्त स्टाफ़ और विद्यार्थियों की ओर से)

"पुस्तक के पन्ने तो पलट गए, पर सुगंध अभी बाकी है,

आप भले ही चले गए दूर, पर हृदय में आपकी यादें काफी हैं।"

वडाली की शेठ सी. जे. हाईस्कूल के इतिहास में 28 जनवरी 2025 का वह दिन कभी न भूलने वाला काला दिन बन गया। जब समाचार मिले कि हमारे हम सभी के चहेते, आदर्श शिक्षक और निश्छल व्यक्तित्व के धनी श्री प्रतापसिंह किशोरसिंह चौहान साहब हमें छोड़कर परमधाम सिधार गए हैं, तब स्कूल का पूरा माहौल स्तब्ध हो गया था। केवल एक व्यक्ति नहीं, बल्कि शिक्षा जगत का एक देदीप्यमान सितारा अस्त हुआ था।

स्कूल के स्टाफ़रूम में प्रतापसिंह साहब की उपस्थिति केवल एक सहकर्मी की नहीं, बल्कि एक परिवार के सदस्य जैसी होती थी। वरिष्ठ शिक्षकों के लिए वे एक विश्वस्त साथी थे, तो नए आने वाले शिक्षकों के लिए वे हमेशा एक मार्गदर्शक बनकर रहे। उनका स्वभाव सही अर्थों में 'अजातशत्रु' था। स्टाफ़ में कैसी भी वैचारिक भिन्नता हो, पर साहब के पास हर प्रश्न का हँसता हुआ समाधान तैयार रहता था। उनकी सौम्य मुस्कान किसी भी तनावग्रस्त साथी शिक्षक को हल्का कर देती थी। उन्होंने कभी किसी से ईर्ष्या नहीं की और न ही किसी की पीठ पीछे बात की; वे हमेशा कहते थे कि हम तो विद्या के उपासक हैं, हमारे मन में मलिनता शोभा नहीं देती। आज स्टाफ़रूम की वह कुर्सी भले ही खाली है, पर उनकी आत्मीयता की महक हर कोने में फैली हुई है।

विद्यार्थियों के लिए तो प्रतापसिंह साहब यानी एक ऐसे गुरु जिनकी कक्षा (पिरियड) का उत्सुकता से इंतज़ार किया जाता था। गुजराती साहित्य के शब्द हों, भूगोल के नक्शे हों या समाजशास्त्र के जटिल विषय - साहब के पढ़ाने की शैली इतनी सहज और सरल थी कि आखिरी बेंच पर बैठने वाले विद्यार्थी में भी विषय के प्रति रुचि जाग उठती थी। वे केवल पाठ्यपुस्तक का ज्ञान नहीं देते थे, बल्कि जीवन जीने की सही कला सिखाते थे। अनेक गरीब और ज़रूरतमंद विद्यार्थियों के लिए वे गुप्त रूप से मदद का स्रोत बनते थे। यात्राओं (प्रवास)

के दौरान वे खुद एक बच्चे बनकर विद्यार्थियों के साथ घुल-मिल जाते और ज्ञान के साथ आनंद बाँटते थे। पुरस्कार वितरण में जब साहब का नाम घोषित होता, तब विद्यार्थियों की तालियों की गड़गड़ाहट से पूरा मैदान गूँज उठता था - यही उनकी असली और पवित्र कमाई थी।

साहब के जीवन का सबसे बड़ा आदर्श उनका 'समयपालन' था। स्कूल की घंटी बजने से पहले साहब अपने स्थान पर मौजूद होते ही थे। उन्होंने कभी अपनी ज़िम्मेदारी में आलस या ढिलाई नहीं बरती। कैंसर जैसी जानलेवा बीमारी के दौरान मुँह के छालों के साथ पीड़ादायक समय में भी, उस पीड़ा को हँसते हुए सहन करके वे स्कूल आते थे और पूरी निष्ठा से पढ़ाते थे। उनका यह अतुलनीय समर्पण आज भी वडाली हाईस्कूल के हर विद्यार्थी और शिक्षक के लिए एक जीवंत प्रेरणापुंज है।

साहब के जीवन का संघर्ष हमें हमेशा हिम्मत देता है। राधिवाड़ से 10-10 किलोमीटर की कठिन पैदल यात्रा करके प्राप्त की गई शिक्षा और उसके बाद एक आदर्श शिक्षक के रूप में यह पूरी यात्रा - यह कोई साधारण यात्रा नहीं है, बल्कि एक सच्चे पुरुषार्थ की विजय है। उन्होंने जो कष्ट सहे हैं, उन्हें जानकर ही हमें समझ आता है कि शिक्षा का असली मूल्य क्या है। साहब, आपकी यह विदाई वास्तव में अधूरी और चौंकाने वाली है। कुदरत का यह फैसला स्वीकार करना हमारे लिए अत्यंत कठिन है, पर शायद ईश्वर को भी एक श्रेष्ठ और पवित्र शिक्षक की आवश्यकता पड़ी होगी इसीलिए आपको इतनी जल्दी बुला लिया।

रणविजयसिंह, आप आज जब अपने पिता के उत्कृष्ट संस्कारों को पुस्तक के रूप में अमर कर रहे हैं, तब हमें गर्व है कि हम उस महामानव के सहयात्री रहे हैं। पिताजी की इस अधूरी विदाई को आप अपनी सफलता और सेवा द्वारा पूर्ण करें, यही हमारी हृदय से अभिलाषा है। हे परमकृपालु परमात्मा! वडाली के इस 'अजातशत्रु' शिक्षक और हमारे आदरणीय प्रतापसिंह साहब की पवित्र आत्मा को अपने चरणों में अक्षय स्थान देना और उनके परिवार को इस असह्य वियोग को सहने की अपार शक्ति देना। साहब, आप भले ही देह से हमारे बीच नहीं हैं, पर इस स्कूल की हर दीवार, हर बेंच और हज़ारों विद्यार्थियों के हृदय में आप सदा के लिए 'जीवित' रहेंगे। आपके आशीर्वाद और यादें हमारी सच्ची पूँजी बनी रहेंगी।

आपके निश्छल व्यक्तित्व और स्मरणों को समस्त वडाली हाईस्कूल परिवार का कोटि-कोटि वंदन!

लिखने वाले:

प्रधानाचार्य (प्रिंसिपाल), शिक्षकगण एवं प्रिय विद्यार्थी
(शेठ श्री सी जे हाईस्कूल प्रधानाचार्य)
वडाली....

‘अधूरी विदाई’ — पिता को शब्दों में समर्पित एक अमर श्रद्धांजलि

लेखक श्री रणविजयसिंह प्रतापसिंह चौहान जी को सादर प्रणाम।

आपकी पुस्तक ‘अधूरी विदाई’ पढ़ने के बाद मेरे मन में जो भावनाएँ उमड़ीं, उन्हें शब्दों में बाँधना मेरे लिए सहज नहीं है। फिर भी, हृदय की गहराइयों से निकले कुछ शब्द आपके और आपके पूज्य पिताश्री के चरणों में समर्पित करना चाहती हूँ।

सर्वप्रथम, स्वर्गीय श्री प्रतापसिंह किशोरसिंह चौहान जी को मैं कोटि-कोटि नमन एवं भावपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित करती हूँ। साथ ही, लेखक श्री रणविजयसिंह चौहान जी को हृदय से हार्दिक बधाई और अभिनंदन देती हूँ कि उन्होंने अपने पिता के जीवन को केवल अपनी स्मृतियों में ही नहीं रखा, बल्कि उसे पुस्तक के रूप में आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित कर दिया।

सच कहूँ तो आपके लिए मेरे पास पर्याप्त शब्द नहीं हैं।

एक पुत्र अपने पिता से केवल जन्म का रिश्ता नहीं पाता; वह अपने पिता से जीवन जीने की कला, संघर्ष करने का साहस, संस्कारों की विरासत और आगे बढ़ने की प्रेरणा भी प्राप्त करता है। आपने अपने पिता के जीवन को शब्द देकर यह सिद्ध कर दिया है कि एक पुत्र अपने पिता के जीवन से लेखक भी बन सकता है और असंभव लगने वाली चीज़ को भी संभव कर सकता है।

जब मैंने ‘अधूरी विदाई’ पढ़नी शुरू की, तो धीरे-धीरे ऐसा महसूस होने लगा कि मैं किसी और के पिता की कहानी नहीं पढ़ रही हूँ, बल्कि अपने ही पिता की कहानी पढ़ रही हूँ।

मेरे माता-पिता दोनों लगभग 60–61 वर्ष की आयु में इस संसार से विदा हो गए। आज उन्हें गए हुए लगभग 10–11 वर्ष बीत चुके हैं। समय के साथ मनुष्य अपनी भावनाओं को कहीं गहराई में दबा देता है। जीवन आगे बढ़ता रहता है और हम अपनी व्यस्तताओं में उन यादों को जैसे दफन कर देते हैं।

लेकिन ‘अधूरी विदाई’ ने उन सभी भावनाओं को फिर से जीवित कर दिया।

पुस्तक पढ़ते-पढ़ते मेरे मन और मेरी आत्मा ने जैसे मुझसे कहा—

"जिस पिता की कमी को तुमने वर्षों से अपने भीतर दबा दिया था, आज वही कमी इन शब्दों के माध्यम से फिर तुम्हारे सामने खड़ी है।"

इस पुस्तक के कई प्रसंग मुझे इतने अपने लगे कि ऐसा महसूस हुआ मानो मैं स्वर्गीय श्री प्रतापसिंह चौहान जी के सामने बैठकर उनसे रूबरू बातचीत कर रही हूँ।

एक पिता की कमी क्या होती है, यह वही समझ सकता है जिसने पिता को खोया हो। पिता का स्थान जीवन में कितना महत्वपूर्ण है, इसे शब्दों में पूरी तरह व्यक्त करना संभव नहीं। माता-पिता दोनों ही संतान के लिए अनमोल होते हैं और दोनों की अपनी अलग-अलग भूमिका होती है। पिता का स्नेह, अनुशासन, संघर्ष और छाया संतान के जीवन को एक अलग आधार देती है।

आज के समय में जब जीवन की भागदौड़ में कई संतानें अपने माता-पिता से दूर होती जा रही हैं और वृद्ध माता-पिता को वृद्धाश्रम तक की यात्रा करनी पड़ती है, तब 'अधूरी विदाई' एक बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न हमारे सामने रखती है—हम अपने माता-पिता के प्रति अपने कर्तव्य को कितना समझते हैं?

रणविजयसिंह जी ने अपने पिता के प्रति अपने प्रेम को केवल आँसुओं और स्मृतियों तक सीमित नहीं रखा। उन्होंने उस प्रेम को शब्दों में ढाला, पन्नों पर उतारा और एक पुस्तक का रूप देकर अमर कर दिया।

मुझे यह कार्य देखकर एक फिल्म का प्रसंग याद आता है—**'Tarzan: The Wonder Car'**में एक पुत्र अपने पिता की प्रिय कार को कबाड़ से भी वापस लेकर आता है, क्योंकि उसके लिए वह कार केवल एक वस्तु नहीं, बल्कि उसके पिता की स्मृति और प्रेम का प्रतीक होती है।

उसी प्रकार, रणविजयसिंह जी ने भी अपने पिता की स्मृतियों को अपने हृदय में सहेजकर उन्हें साहित्य के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत किया है। उन्होंने अपने पिता के जीवन को फिर से जिया है—उनके संघर्षों को समझा है, उनके विचारों को जाना है और उनके जीवन के हर महत्वपूर्ण पड़ाव को शब्दों में संजोया है।

पुस्तक में उनके पिता का एक वाक्य मेरे हृदय में विशेष रूप से उतर गया—

«"गमती हुई वस्तु के लिए चाहे जितनी कीमत चुकानी पड़े, चुका देना चाहिए, वरना वह वस्तु फिर कभी नहीं मिलेगी।"»

यह वाक्य पढ़ते ही मुझे लगा जैसे मेरे अपने पिता मुझसे यही बात कह रहे हों।

मेरे पिता ने भी सीमित साधनों में रहते हुए जीवन को पूरी गरिमा और संतोष के साथ जिया। कम साधनों के बावजूद उन्होंने जीवन को बेहतर बनाने का प्रयास किया। यही बात मुझे स्वर्गीय श्री प्रतापसिंह चौहान जी के जीवन में भी दिखाई देती है—संघर्ष थे, परिस्थितियाँ थीं, लेकिन जीवन के प्रति समर्पण और अपने कर्म के प्रति ईमानदारी बनी रही।

इसीलिए मेरे लिए 'अधूरी विदाई' केवल एक पुस्तक नहीं है।

यह एक पुत्र का अपने पिता से संवाद है।

यह एक पुत्र की अपने पिता के प्रति श्रद्धांजलि है।

यह एक परिवार की स्मृतियों का दस्तावेज है।

और सबसे बढ़कर, यह आने वाली पीढ़ियों के लिए संस्कारों और जीवन-मूल्यों की विरासत है।

मेरे लिए तो यह पुस्तक 'अधूरी विदाई' नहीं, बल्कि एक संपूर्ण कहानी है।

क्योंकि किसी व्यक्ति का शरीर संसार से विदा हो सकता है, लेकिन उसके संस्कार, उसके विचार, उसके कर्म और उसके द्वारा दिए गए शब्द कभी विदा नहीं होते। वे संतान के जीवन में, परिवार की स्मृतियों में और आने वाली पीढ़ियों के संस्कारों में हमेशा जीवित रहते हैं।

मैं हृदय से कामना करती हूँ कि 'अधूरी विदाई' हिंदी और अंग्रेज़ी दोनों माध्यमों में अधिक से अधिक पाठकों तक पहुँचे और राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बनाए। यह पुस्तक केवल उन लोगों तक न पहुँचे जिन्होंने अपने माता-पिता को खोया है, बल्कि उन लोगों तक भी पहुँचे जिनके माता-पिता आज उनके साथ हैं—ताकि वे समय रहते माता-पिता के प्रेम, त्याग और महत्व को समझ सकें।

मैं स्वयं उस गाँव की निवासी हूँ, जहाँ स्वर्गीय श्री प्रतापसिंह चौहान जी ने शिक्षक के रूप में अपनी सेवा दी। यह मेरे लिए गर्व की बात है कि ऐसे शिक्षक के जीवन और कार्यों से जुड़े गाँव का हिस्सा होने का मुझे अवसर मिला।

इसी कारण मैं आज की नई पीढ़ी और विशेषकर विद्यार्थियों से आग्रह करती हूँ कि वे 'अधूरी विदाई' को अवश्य पढ़ें। यह पुस्तक केवल एक पिता की कहानी नहीं बताएगी,

बल्कि उन्हें बताएगी कि जीवन में माता-पिता का स्थान क्या है, संघर्षों के बीच कैसे आगे बढ़ना है और अपने संस्कारों को अगली पीढ़ी तक कैसे पहुँचाना है।

आज के समय में जब नई पीढ़ी को अनेक दिशाओं में भटकाने वाली चीज़ें हमारे आसपास हैं, तब ऐसी पुस्तकें उन्हें अपने मूल, अपने परिवार और अपने संस्कारों से जोड़ने का कार्य कर सकती हैं।

अंत में, मैं यही कहना चाहूँगी—

रणविजयसिंह जी, आपने अपने पिता को विदाई नहीं दी है; आपने उन्हें शब्दों के माध्यम से आने वाली पीढ़ियों के बीच हमेशा के लिए जीवित कर दिया है।

आपकी कलम ने आपके पिता के जीवन को केवल कागज़ पर नहीं उतारा, बल्कि उनकी स्मृतियों को उन लोगों के हृदय तक पहुँचाया है, जिन्होंने शायद उन्हें कभी देखा भी नहीं।

और मेरे लिए सबसे भावुक बात यह है कि इस पुस्तक को पढ़ते समय मुझे कई बार ऐसा लगा कि मेरे अपने माता-पिता भी कहीं दूर नहीं गए हैं—वे मेरे साथ हैं, मेरी स्मृतियों में हैं, मेरे संस्कारों में हैं और मेरे जीवन के हर कदम में मेरे साथ चल रहे हैं।

स्वर्गीय श्री प्रतापसिंह किशोरसिंह चौहान जी को कोटि-कोटि नमन एवं भावपूर्ण श्रद्धांजलि।

लेखक श्री रणविजयसिंह प्रतापसिंह चौहान जी को सादर प्रणाम एवं हृदय से हार्दिक अभिनंदन।

ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना है कि आपके पिता की स्मृतियाँ सदैव जीवित रहें और आपकी यह पुस्तक असंख्य परिवारों तक पहुँचकर उन्हें अपने माता-पिता के प्रति प्रेम, सम्मान और कर्तव्य का एहसास कराए।

अंत मे यही कहूंगी की मेरे पिता दशरथ भाई भी राजा दशरथ की तरह ही अपने जीवन के सिद्धांतों और आदर्शों के साथ जिए। मेरे विवाह के बाद मेरे ससुर, मेरे दूसरे पिता, रणछोड़ भाई भी भगवान श्रीकृष्ण के नाम की तरह सत्य, सम्मान और धर्म के मार्ग पर अपना जीवन जीते रहे।

आज इस पुस्तक के माध्यम से दोनों पिताओं की यादें फिर से ताज़ा हो गईं। उनके जीवन के संस्कार, आदर्श, सत्य और सम्मान के प्रति उनकी निष्ठा मेरे मन में फिर से जीवंत हो उठी।

वीर प्रतापसिंह भी वही सम्मान और सत्य के मार्ग पर चलने वाले आदर्श व्यक्तित्व थे। उनका जीवन हम सभी के लिए प्रेरणा और आदर्श है। उनके जैसे महान व्यक्तित्व की यादें हमेशा हमारे हृदय में जीवित रहेंगी।

सादर एवं स्नेहपूर्वक,
आपकी बड़ी बहन
जल्पा बेन (एन.आर.) सुथार
(निवासी — वडाली, साबरकांठा, गुजरात)

"शरीर भले ही पंचतत्वों में विलीन हो गया हो बापू,
परंतु आपकी स्मृतियों की विरासत सदा अखंड रहेगी...
बाईक का वह सूनापन आज भी आपसे बातें करता है,
आपका साथ, आपकी मुस्कान सदा हमारे संग रहेगी।"

‘अधूरी विदाई’: केवल एक पुस्तक नहीं, बल्कि एक समर्पित पुत्र की अपने पिता के श्रीचरणों में सच्ची शब्दांजलि

परम श्रद्धेय, निष्कपट एवं सरल स्वभाव की साक्षात मूरत स्व. श्री प्रतापसिंह बापू ('राणा साहेब') की अमर स्मृतियों में अश्रुपूरित नमन...

जब हृदय की गहराइयों से निकले शब्द कागज़ पर उतरते हैं, तो यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि ‘अधूरी विदाई’ केवल कागज़ और स्याही से बनी कोई साधारण पुस्तक नहीं है। यह तो एक समर्पित पुत्र द्वारा अपने पूज्य पिताजी के श्रीचरणों में अर्पित की गई एक अत्यंत पवित्र, भावुक और सच्चे अर्थों में अमर श्रद्धांजलि है।

पूज्य प्रतापसिंह बापू के साथ बिताया गया वह एक-एक क्षण, उनके साथ व्यतीत किया गया वह स्वर्णिम समय आज भी मेरे स्मृति-पटल पर कल की भाँति जीवंत होकर तैरता है। बापू का वह वटवृक्ष जैसा गंभीर किंतु निष्कपट व्यक्तित्व, उनका अत्यंत सरल और आत्मीय स्वभाव, और हर किसी के साथ प्रेमपूर्वक घुल-मिल जाने की उनकी अद्भुत शैली—यह सब कुछ ऐसा था जो उनसे जुड़ने वाले हर व्यक्ति के हृदय में सदा-सदा के लिए अंकित हो गया है।

"कुछ व्यक्तित्व इस संसार से विदा होकर भी हृदयों से कभी ओझल नहीं होते,

उनके विचार, संस्कार और आदर्श कभी अस्त नहीं होते..."

वडाली से राधीवाड़ तक का वह मार्ग आज भी बापू की पावन उपस्थिति की गवाही देता है। वे दिन बार-बार याद आते हैं जब बापू के साथ बाईक पर बैठकर बातें करते हुए, जीवन के अनुभवों और उच्च मूल्यों पर चर्चा करते हुए हम वडाली से राधीवाड़ आया-जाया करते थे। वह यात्रा केवल दो स्थानों के बीच की दूरी तय करना नहीं था, बल्कि बापू के ओजस्वी विचारों के अमृत-रस को आत्मसात करने के अनमोल क्षण थे।

आज भी जब मैं उसी मार्ग से अपनी बाईक लेकर गुजरता हूँ, तो पीछे की सीट पर एक असहनीय 'रिक्तता' (खालीपन) का अहसास होता है। वह सूनापन इस बात का भान कराता है

कि बापू आज भौतिक रूप से हमारे बीच नहीं हैं, परंतु उसी क्षण हृदय के स्पंदनों से यह आवाज़ आती है कि बापू तो हमारी यादों में, हमारी बातों में और हमारी हर श्वास में सदा-सदा के लिए अमर हैं।

"विदाई भले ही अधूरी रह गई हो इस संसार की आँखों में,

परंतु आप तो अमर हो गए अपने स्नेही मित्रों के हृदय में..."

पूज्य बापू की भौतिक विदाई भले ही इस संसार के लिए 'अधूरी' रह गई हो, परंतु इस 'अधूरी विदाई' पुस्तक के माध्यम से बापू मुझ जैसे अनेक स्नेही मित्रों, सहयोगियों, शिक्षकों और संपूर्ण समाज के हृदय में अमर रहेंगे।

एक उत्कृष्ट शिक्षक के रूप में उनका दिया ज्ञान, एक पिता के रूप में उनके दिए उच्च संस्कार, और एक आदर्श मानव के रूप में उनका स्वाभिमान आने वाली अनेक पीढ़ियों के लिए मार्गदर्शक दीपक बनकर सदा प्रज्वलित रहेगा।

पूज्य प्रतापसिंह बापू ('राणा साहेब') की दिव्य आत्मा को परमपिता परमेश्वर अपने श्रीचरणों में नित्य शांति प्रदान करें और उनका आशीर्वाद हम सभी पर सदा बरसता रहे, यही प्रार्थना है।

"जीना तो ऐसा जीना कि यह जमाना याद करे,
बापू, आपका नाम ही आज हर हृदय में वास करे।"

अश्रुपूरित नमन एवं भावभीनी श्रद्धांजलि...
जय माताजी!
श्रद्धावनत एवं स्नेही:
भरतभाई एम. पटेल
मॉडर्न हाईस्कूल – वडाली

‘अधूरी विदाई’: एक पुत्र के हृदय से निकली भावनाओं की अमर अभिव्यक्ति

‘अधूरी विदाई’ केवल एक पुस्तक का नाम नहीं, बल्कि उस दर्द की अभिव्यक्ति है, जिसे शब्दों में समेट पाना आसान नहीं। रणविजयसिंह चौहान द्वारा लिखित यह कृति किसी काल्पनिक कहानी की तरह नहीं, बल्कि एक पुत्र के हृदय से निकली वेदना, स्मृतियों और अपने पिता के प्रति असीम प्रेम की सच्ची गाथा है।

लेखक ने वडाली के आदर्श शिक्षक रहे अपने पूजनीय पिता श्री प्रतापसिंह चौहान के जीवन को जिस सहजता, संवेदनशीलता और आत्मीयता के साथ शब्दों में पिरोया है, वह अत्यंत प्रशंसनीय है। पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ पर पिता का संघर्ष, उनका त्याग, उनके संस्कार और परिवार के प्रति उनका समर्पण जीवंत होता दिखाई देता है। इसे पढ़ते हुए ऐसा प्रतीत होता है मानो हम किसी पुस्तक को नहीं, बल्कि एक पिता के पूरे जीवन को अपनी आँखों के सामने घटित होते हुए देख रहे हों।

मौन संघर्ष को मिली आवाज़

पिता अक्सर अपने संघर्षों को शब्द नहीं देते। वे अपनी पीड़ा को मुस्कान के पीछे छिपाकर परिवार की खुशियों के लिए निरंतर संघर्ष करते रहते हैं। अपने बच्चों के उज्ज्वल भविष्य के लिए वे स्वयं कितनी कठिनाइयाँ सहते हैं, कितनी परिस्थितियों से लड़ते हैं और कितने सपनों का त्याग करते हैं—इस मौन संघर्ष को ‘अधूरी विदाई’ ने अत्यंत मार्मिक ढंग से आवाज़ दी है।

यह पुस्तक हमें उस पिता को समझने का अवसर देती है, जिसे हम अपने जीवन में मौजूद तो देखते हैं, लेकिन उसके भीतर चल रहे संघर्षों को अक्सर समझ नहीं पाते।

एक पिता और एक आदर्श शिक्षक की विरासत

इस पुस्तक की विशेषता यह है कि इसमें केवल एक पिता की स्मृतियाँ ही नहीं हैं, बल्कि एक ऐसे आदर्श शिक्षक के व्यक्तित्व और संस्कारों की विरासत भी है, जिसने अपने जीवन से अनेक लोगों को प्रेरित किया।

शिक्षक के रूप में उनका योगदान और पिता के रूप में उनका त्याग—दोनों मिलकर उनके व्यक्तित्व को विराट बनाते हैं। उनके असामयिक निधन से परिवार और अपने लोगों के जीवन में जो गहरा खालीपन उत्पन्न हुआ, उसी पीड़ा को 'अधूरी विदाई' शीर्षक अत्यंत सार्थकता से व्यक्त करता है।

हर संतान के लिए एक आईना

इस पुस्तक का सबसे भावुक पक्ष यह है कि यह केवल लेखक की कहानी बनकर नहीं रह जाती, बल्कि पढ़ने वाले प्रत्येक पुत्र-पुत्री को अपने माता-पिता की याद दिलाती है।

पुस्तक पढ़ते हुए मन बार-बार यह सोचने पर विवश हो जाता है कि जिन माता-पिता का प्रेम, त्याग और साथ हमें सहज रूप से प्राप्त होता है, उनके महत्व को हम उनके रहते कितनी बार समझ पाते हैं?

'अधूरी विदाई' हमें यही सीख देती है कि माता-पिता के साथ बिताया हुआ प्रत्येक क्षण अनमोल है। उनके प्रेम को महसूस करना, उनके त्याग को समझना और उनके रहते उनका सम्मान करना ही सच्ची श्रद्धांजलि है।

अंतिम शब्द

संक्षेप में कहूँ तो 'अधूरी विदाई' पढ़ी जाने वाली पुस्तक नहीं, बल्कि महसूस की जाने वाली अनुभूति है। यह पुस्तक आँखों को नम करती है, मन को भीतर तक छूती है और पिता के प्रति हमारे भावों को एक नई दृष्टि देती है।

यह एक पुत्र की अपने पिता के प्रति प्रेम, कृतज्ञता और श्रद्धा से लिखी गई ऐसी भावपूर्ण अभिव्यक्ति है, जिसमें केवल एक परिवार की कहानी नहीं, बल्कि हर उस पिता की कहानी दिखाई देती है, जो अपने बच्चों के भविष्य के लिए अपना वर्तमान समर्पित कर देता है।

रणविजयसिंह चौहान को इस अत्यंत भावपूर्ण और संवेदनशील कृति के लिए हार्दिक बधाई एवं साधुवाद। उन्होंने अपने पिता की स्मृतियों को केवल शब्दों में नहीं, बल्कि भावनाओं में संजोकर एक ऐसी अमूल्य विरासत प्रस्तुत की है, जो लंबे समय तक पाठकों के हृदय में जीवित रहेगी।

—आज्ञा चौधरी
(गांधीनगर, गुजरात)

एक सच्ची घटना पर आधारित पुस्तक — "अधूरी विदाई"

यह पुस्तक एक सच्ची घटना पर आधारित है। पुस्तक पढ़ते समय ऐसा महसूस होता है कि इसमें लिखी गई घटनाएँ हमारे आसपास घट रही हों। लेखक ने बहुत ही भावनात्मक और सरल भाषा में एक पिता और उनके जीवन से जुड़ी घटनाओं को प्रस्तुत किया है।

इस पुस्तक में पिता के जीवन, उनके संघर्ष और अपने विद्यार्थियों के प्रति उनके प्रेम को बहुत सुंदर तरीके से दर्शाया गया है। पिता का जीवन केवल उनके परिवार तक सीमित नहीं था, बल्कि वे अपने विद्यार्थियों के जीवन को भी बेहतर बनाने के लिए हमेशा प्रयासरत रहते थे।

एक शिक्षक के रूप में उनका जीवन आदर्श था। वे अपने विद्यार्थियों को केवल किताबी ज्ञान ही नहीं देते थे, बल्कि जीवन में आगे बढ़ने और अच्छे इंसान बनने की सीख भी देते थे। उनके विद्यार्थियों के मन में उनके प्रति बहुत सम्मान और प्रेम था।

पुस्तक में पिता और पुत्र के बीच के भावनात्मक संबंध को भी बहुत अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया गया है। पिता के साथ बिताया हुआ समय, उनकी बातें और उनकी यादें पाठक के मन को छू जाती हैं।

पुस्तक की सबसे खास बात यह है कि इसमें भावनाओं को बहुत सहज और प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया गया है। कई घटनाएँ पढ़ते समय मन भावुक हो जाता है और पिता के प्रति प्रेम तथा सम्मान और भी बढ़ जाता है।

"अधूरी विदाई" केवल एक पुस्तक नहीं, बल्कि पिता के प्रेम, शिक्षक के आदर्श जीवन और उनकी यादों को समर्पित एक भावनात्मक कहानी है। पुस्तक पढ़ने के बाद पाठक के मन में एक गहरी छाप रह जाती है।

मेरी दृष्टि से यह पुस्तक पढ़ने योग्य है। यह पुस्तक हमें माता-पिता और शिक्षकों के महत्व को समझने के साथ-साथ उनके प्रति सम्मान और कृतज्ञता की भावना भी जगाती है।

बिमल पटेल
(सूरत, गुजरात)

अधूरी विदाई — एक बेटे के हृदय से निकली पिता को भावपूर्ण श्रद्धांजलि

"अधूरी विदाई" केवल एक पुस्तक नहीं है, बल्कि एक बेटे के हृदय में अपने पिता के प्रति संजोए प्रेम, स्मृतियों और भावनाओं की एक ऐसी अभिव्यक्ति है, जो पाठक के मन को भीतर तक छू जाती है। यह पुस्तक एक बेटे द्वारा अपने दिवंगत पिता को समर्पित वह भावपूर्ण श्रद्धांजलि है, जिसमें शब्दों से अधिक भावनाएँ बोलती हैं।

पिता के जाने के बाद उनके साथ बिताए हुए पल अक्सर यादों में और भी गहरे उतर जाते हैं। लेखक ने इन्हीं यादों, पिता के स्नेह, उनके व्यक्तित्व, उनके संस्कारों और जीवन में उनके अमूल्य योगदान को जिस संवेदनशीलता के साथ शब्दों में पिरोया है, वह अत्यंत मार्मिक है। पुस्तक का प्रत्येक पन्ना ऐसा प्रतीत होता है, मानो पिता से जुड़ी कोई पुरानी स्मृति फिर से आँखों के सामने जीवंत हो उठी हो।

पिता भले ही आज हमारे बीच शारीरिक रूप से उपस्थित न हों, लेकिन उनके दिए संस्कार, उनकी सीख, उनका प्रेम और उनके आशीर्वाद जीवन के हर कदम पर हमारे साथ चलते रहते हैं। शरीर से दूर होकर भी पिता हमारे भीतर जीवित रहते हैं—हमारी सोच में, हमारे व्यवहार में और हमारे जीवन के उन मूल्यों में, जो उन्होंने हमें दिए हैं। "अधूरी विदाई" इसी शाश्वत सत्य को बेहद खूबसूरती से सामने लाती है।

इस पुस्तक की विशेषता यह है कि लेखक ने केवल अपने पिता को खोने का दुःख व्यक्त नहीं किया, बल्कि उनके जीवन और व्यक्तित्व को भी बेहद आत्मीयता से प्रस्तुत किया है। पिता उनके लिए केवल एक रिश्ते का नाम नहीं थे, बल्कि जीवन का आधार, मार्गदर्शक और प्रेरणा थे। यही कारण है कि पुस्तक को पढ़ते हुए कई स्थानों पर आँखें नम हो जाती हैं और पाठक अनायास ही अपने माता-पिता के साथ बिताए पलों और उनसे जुड़ी यादों में खो जाता है।

"अधूरी विदाई" शीर्षक अपने आप में बहुत कुछ कह जाता है। जीवन में कुछ विदाइयाँ सचमुच अधूरी रह जाती हैं, क्योंकि जिनसे हम आखिरी बार मिलकर बहुत कुछ कहना चाहते हैं, उनसे अचानक बिछड़ना पड़ता है। बहुत-सी बातें अनकही रह जाती हैं, बहुत-से भाव मन में ही रह जाते हैं और बहुत-से शब्द होंठों तक आकर भी कहे नहीं जा पाते। लेकिन

सच्चे रिश्तों की विदाई कभी पूर्ण नहीं होती। वे यादों में, संस्कारों में और दिल की गहराइयों में हमेशा जीवित रहते हैं।

पिता की विदाई केवल उनके हमारे बीच से चले जाने का नाम नहीं है; यह उस उपस्थिति की कमी का एहसास भी है, जो जीवन के हर मोड़ पर हमारा सहारा बनी रही। उनकी आवाज़, उनका स्पर्श, उनकी डाँट, उनका स्नेह और उनका मार्गदर्शन—सब कुछ उनकी विदाई के बाद और अधिक मूल्यवान महसूस होने लगता है।

इस पुस्तक का सबसे सुंदर संदेश यही है कि पिता और बेटे का प्रेम मृत्यु से भी समाप्त नहीं होता। समय बीत सकता है, परिस्थितियाँ बदल सकती हैं और इंसान हमारे सामने से चला जा सकता है, लेकिन सच्चा प्रेम कभी विदा नहीं होता। वह हमारे भीतर साँस लेता रहता है—हमारी यादों में, हमारी भावनाओं में और हमारे जीवन के हर उस निर्णय में, जिसमें कहीं न कहीं पिता की सीख दिखाई देती है।

यह पुस्तक केवल उन लोगों के लिए नहीं है जिन्होंने अपने माता-पिता को खोया है, बल्कि हर उस व्यक्ति के लिए है जिसने कभी अपने माता-पिता के प्रेम, त्याग और महत्व को महसूस किया है। यह पुस्तक पढ़ते हुए पाठक केवल लेखक की भावनाओं को नहीं पढ़ता, बल्कि कहीं न कहीं अपने जीवन की उन विदाइयों को भी महसूस करता है, जिनकी टीस आज भी हृदय में कहीं गहराई से मौजूद है।

"अधूरी विदाई" पिता को समर्पित बेटे के प्रेम, विरह, स्मृतियों और अनकहे भावों की एक अत्यंत सुंदर, भावपूर्ण और अविस्मरणीय अभिव्यक्ति है।

«"कुछ विदाइयाँ कभी पूरी नहीं होतीं…

क्योंकि जिनसे हम विदा लेते हैं, वे हमारे दिल से कभी विदा नहीं होते।

उनकी आवाज़ भले ही सुनाई न दे,

लेकिन उनकी यादें हमेशा हमारे भीतर जीवित रहती हैं…"»

जयदीपसिंह डाभी
(अहमदाबाद, गुजरात)

मेरे जीवन की दिशा बदलने वाले और मेरी हर उपलब्धि की नींव रखने वाले गुरु के नाम...

आपको इस दुनिया से विदा हुए एक साल बीत चुका है, लेकिन आज भी आपका प्रभाव मेरे जीवन में उतना ही गहरा है, जितना पहले था। जब भी मैं सोचता हूँ कि आज मैं जहाँ भी हूँ, वहाँ तक कैसे पहुँचा हूँ, तो मुझे एहसास होता है कि मेरी सफलता की जड़ें सीधे आपसे जुड़ी हुई हैं। कक्षा 11वीं और 12वीं (2021–2022) के दौरान आप मेरे लिए केवल एक शिक्षक नहीं थे, बल्कि एक मार्गदर्शक, एक सच्चे गुरु और मेरे जीवन के सबसे बेहतरीन शिक्षक थे।

आपने हमें केवल भूगोल और समाजशास्त्र ही नहीं पढ़ाया, बल्कि दुनिया और समाज को समझने का ऐसा नजरिया दिया कि हमें इन विषयों से प्रेम हो गया। आपने हमें किताबों में लिखी बातों से कहीं अधिक सिखाया। आपने मुझे खुद पर विश्वास करना, जिज्ञासा के साथ सीखना और आत्मविश्वास के साथ आगे बढ़ना सिखाया।

आपके मार्गदर्शन, धैर्य और मुझ पर किए गए विश्वास की बदौलत ही मैंने इन दोनों विषयों में सर्वाधिक अंक प्राप्त किए। मुझे वह बात हमेशा याद रहेगी, जब आप 90 से अधिक अंक प्राप्त करने वाले प्रत्येक विद्यार्थी को अपनी जेब से ₹1,000 पुरस्कार के रूप में दिया करते थे। यह इस बात का सच्चा प्रमाण था कि आप अपने विद्यार्थियों की कितनी परवाह करते थे और उनकी सफलता एवं प्रगति से कितनी खुशी महसूस करते थे।

आपके द्वारा दिए गए हर ज्ञान, प्रोत्साहन के हर शब्द और मुझ पर किए गए विश्वास के हर पल के लिए आपका दिल से धन्यवाद।

भले ही आज आप हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन आपकी उदारता, आपके पढ़ाने का जुनून और आपकी दी हुई सीख हमेशा हमारी यादों में और उन सभी लोगों के जीवन में जीवित रहेगी, जिन्हें आपने कभी न कभी प्रेरित किया था।

आप हमेशा मेरे जीवन के सबसे बेहतरीन शिक्षक रहेंगे।

आपकी आत्मा को शांति मिले।

— अमन स्लेटा,
भारतीय वायु सेना सेवा,
(वडाली, गुजरात)
भूतपूर्व विद्यार्थी

प्रतापसिंह चौहान एक ऐसे शिक्षक हैं, जो विद्यार्थियों के दिलों में अपनी खास जगह बनाकर गए हैं। उन्होंने हमारी उम्र के हर विद्यार्थी को स्कूल के पहले ही दिन अपने बेटे-बेटी की तरह समझा और हमारे लिए पढ़ाई को बहुत दिलचस्प बना दिया। जब भी वे मुस्कुराते चेहरे के साथ हमारी कक्षा में आते थे, तो हर विद्यार्थी के दिल में एक नई उमंग और जागृति आ जाती थी।

न सिर्फ पढ़ाया, हमें सही राह भी दिखाई,
पिता सा साया बनकर, दोस्ती भी निभाई।
प्रताप सर की हर बात में एक सीख छिपी थी,
उनके आने से हर कक्षा में एक रोशनी आई।

उन्होंने हमें सिर्फ पिता समान ही नहीं, बल्कि एक सच्चे मित्र और मार्गदर्शक के रूप में सही राह दिखाई है। हमारी नजरों के सामने उन्होंने हर विद्यार्थी के प्रति एक समान प्रेम भाव दर्शाया है। हमारे जीवन में कभी प्रतापसिंह सर जैसे स्नेही और अमूल्य शिक्षक मिलेंगे, इस बात का मुझे कभी अंदाज़ा नहीं था।

स्कूल की तरफ से आयोजित यात्रा (प्रवास) के दौरान उन्होंने हमारे साथ एक सच्चे दोस्त की तरह देखभाल रखी। सौराष्ट्र की उस यात्रा के साथ उन्होंने हमें मानो अपना ही बचपन याद दिला दिया।

सैर-सपाटे में भी जिन्होंने बचपन याद कराया,
हर दिल को अपनी मुस्कान से सजाया।
सौराष्ट्र के वो दिन आज भी याद आते हैं,
जिनके संग हर पल को खास बनाया।

उन्होंने विद्यार्थियों और स्कूल के साथी शिक्षकों के साथ मिलकर बहुत आनंद लिया था। जब स्कूल से उनकी विदाई के दिन नजदीक आए, तब हर विद्यार्थी की आँखों में आँसू आ गए थे, तब भी उन्होंने हमें जीवन में आगे बढ़ने का हौसला और क्षमता दी।

अलविदा के वक्त आँखें छलक उठी थीं जब,
आपने ही दिया था आगे बढ़ने का हौसला तब।
आपकी हर एक याद आज भी दिल के करीब है,
आप जैसा गुरु मिलना हमारा खुशनसीब है।

उनकी बातें और यादें हमारे साथ रह गईं; उनके साथ बिताया गया स्कूल का हर एक पल एक अनमोल याद बनकर हमेशा के लिए हमारे दिल में बस चुका है।

प्रेषिका (निवेदक):
कामिनीकुंवर राठौड़ (छात्रा)
शेठ सी. जे. हाईस्कूल, वडाली

अपने पिता के चरणों में अपने समस्त भावों के साथ शीश झुकाकर नमन करती हूँ।

"अधूरी विदाई" केवल एक पुस्तक नहीं है, बल्कि मेरे लिए अपने पापा से एक बार फिर मिलने, उन्हें महसूस करने और उनके साथ कुछ पल फिर से जी लेने का एक माध्यम है।

मैं बहुत छोटी थी, इसलिए शायद उस समय पापा के व्यक्तित्व और उनके संघर्षों को पूरी तरह समझ नहीं पाई। लेकिन मेरे छोटे भाई रणविजयसिंह प्रतापसिंह चौहान ने "अधूरी विदाई" के माध्यम से हमारे पापा को फिर से हमारे बीच जीवंत कर दिया है। ऐसा लगता है जैसे उन्होंने हमारे पिता को शब्दों में नहीं, बल्कि उनके विचारों, संस्कारों, कर्मों और स्मृतियों में फिर से लौटा दिया है।

मेरे भाई ने पापा के जीवन को जिस तरह शब्दों में उतारा है, उससे ऐसा महसूस होता है कि उन्होंने पापा के साथ बिताए हर दिन को एक अंतिम दिन की तरह जिया और हर पल को अपने भीतर संजोकर रखा। पापा ने केवल अपने बच्चों को ही नहीं, बल्कि उनके संपर्क में आने वाले हर बच्चे को जीवन में आगे बढ़ने की राह दिखाई। उन्होंने हर किसी को अपने "फोकस" तक पहुँचने का रास्ता दिखाया और अपने कर्मों से यह सिखाया कि जीवन केवल अपने लिए जीने का नाम नहीं, बल्कि दूसरों के जीवन में भी प्रकाश भरने का नाम है।

आज हम दोनों भाई-बहन भी उसी सेवा और संस्कार की राह पर चलने का प्रयास कर रहे हैं। पापा से मिला ज्ञान, उनके संस्कार और उनके द्वारा दिखाया गया रास्ता, उनके इस संसार में न होने के बाद भी विद्यार्थियों तक पहुँचाना हमारे लिए किसी सौभाग्य से कम नहीं है।

आज मेरे पास अपने भाव व्यक्त करने के लिए पर्याप्त शब्द नहीं हैं। बस इतना ही कह सकती हूँ—

मेरे पापा जैसा कोई नहीं था, कोई नहीं है और शायद कोई हो भी नहीं सकता।

उनका होना हमारे लिए सौभाग्य था और उनका जीवन हमारे लिए एक ऐसी सीख है, जो हमेशा हमारे साथ रहेगी।

मैं आज की नई पीढ़ी से भी कहना चाहूँगी कि "अधूरी विदाई" जैसी पुस्तकें केवल पढ़ने के लिए नहीं, बल्कि जीवन को समझने के लिए पढ़ी जानी चाहिए। यह पुस्तक हमें अपने माता-

पिता के संघर्ष, उनके त्याग और उनके प्रेम को समझना सिखाती है। विशेषकर हमें यह सीखना चाहिए कि जब हमारे माता-पिता उम्र के उस पड़ाव पर पहुँचें, जहाँ उन्हें हमारी सबसे अधिक आवश्यकता हो, तब हमें पूरे प्रेम, सम्मान और जिम्मेदारी के साथ उनका सहारा बनना चाहिए।

मेरे छोटे भाई लेखक रणविजयसिंह चौहान को मैं हृदय से अभिनंदन और शुभकामनाएँ देती हूँ कि उन्होंने हमारे पापा की स्मृतियों को शब्दों का रूप देकर उन्हें अमर कर दिया।

रणविजयसिंह, आप सदैव अपने पापा की तरह सम्मान, प्रेम और स्नेह प्राप्त करें—यही मेरी हृदय से शुभकामना है।

पापा आज हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन उनके संस्कार, उनकी सीख और उनका आशीर्वाद आज भी हमारे हर कदम के साथ है।

पापा, आपकी बेटी आज भी आपको उतना ही याद करती है…

और शायद हर जन्म में आपको ही अपना पापा माँगेगी।

आपकी बड़ी बहन,
निलमबा प्रतापसिंह चौहान

पापा... आपकी याद हमेशा रहेगी

आप थे तो घर में खुशियों का उजाला था,
आपके होने से हर पल निराला था।
आपकी उंगली पकड़कर चलना सीखा,
आपसे ही जीवन का हर मतलब सीखा।

आपकी डाँट में भी प्यार छुपा रहता था,
आपका आशीर्वाद हर कदम साथ रहता था।
मुश्किल राहों में हिम्मत बन जाते थे,
गिरते थे जब हम, आप संभाल जाते थे।

आज वो हाथ हमारे सिर पर नहीं है,
आज वो आवाज़ हमारे घर में नहीं है।
लेकिन आपकी बातें दिल में जिंदा हैं,
आपकी यादें हमारी साँसों में जिंदा हैं।

समय बीतेगा, मौसम बदलते रहेंगे,
पर पापा, हम आपको कभी नहीं भूलेंगे।
आपने जो संस्कार दिए, वो साथ रहेंगे,
आपके दिखाए रास्ते पर हम चलते रहेंगे।

ईश्वर से बस इतनी सी प्रार्थना है,
आपकी आत्मा को शांति मिले, यही कामना है।
आप जहाँ भी हों, खुश रहें सदा,
आपका आशीर्वाद बना रहे हम पर सदा।

पापा, आप आज हमारे बीच नहीं हैं,
लेकिन हमारे दिल से कभी दूर नहीं होंगे।
आपकी यादों में ही आपको हर पल पाएँगे।

-रणविजयसिंह प्रतापसिंह चौहान